# आन्वीक्षिकी

## भारतीय शोध पत्रिका

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका


**प्रधान सम्पादिका**

डॉ. मनीषा शुक्ला,maneeshashukla76@rediffmail.com

**पुनर्निरीक्षक संपादक**

प्रो. विभा रानी दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उ.प्र.,भारत

डॉ. नागेन्द्र नारायण मिश्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद,उ.प्र.,भारत

प्रो. उमेश चंद्र दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उ. प्र.,भारत

**सम्पादक**

डॉ. महेन्द्र शुक्ल, डॉ. अंशुमाला मिश्रा

**सम्पादक मण्डल**

डॉ. सारिका त्रिपाठी, डॉ. मुन्नी देवी भास्कर, डॉ. प्रमोद आनंद तिवारी, डॉ. प्रमोद यादव, डॉ. कृष्ण कुमार तिवारी, डॉ. आरती बंसल, डॉ. अर्चना शर्मा, डॉ. आभा रानी, डॉ. कन्हैया, डॉ. अंजली बंसल गोयल, डॉ. शरदेन्दु बाली, डॉ. गीता जोशी, डॉ. रूपाली जैन, डॉ. किरन कुमारी, डॉ. मधुलिका, डॉ. नीलू कुमारी, डॉ. मनीषा आमटे, डॉ. सिद्धार्थ पाण्डेय, डॉ. मनोज कुमार राय, दिनेश मीणा, गुंजन, रमेश चन्द, शंकर, पायल, इन्दरजोत कौर, सिद्धनाथ पाण्डेय, राघवेन्द्र सिंह, आनन्द मोहन, मौसमी कुमारी, देवाशीष पाण्डेय, अमर नाथ, मधुलिका सिन्हा, मोहम्मद अज़फर हसनैन, सन्तोष कुमार

**अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार मण्डल**

रेव डोडामगोडा सुमनासार (श्रीलंका), वेन केन्डागेले सुमनारांसी थेरो (श्रीलंका), रेव टी धम्मारतना (श्रीलंका), पी.त्रिराची सोडामा (श्रीलंका), फ्रा च्युतिदेश सैन्सोम्बट (बैंकाक,थाईलैंड), फ्रा बूनसर्मस्त्रिथा (थाईलैंड), डॉ. सीताराम बहादुर थापा (नेपाल), मोहम्मद सौरजाई (जाबोल, ईरान), माजिद करीमजादेह (ईराक), डॉ. अहमद रेजा केईखाय फरजानेह (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद जारेई (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद मोजटाबा केयाहफरजानेह (जाहेडान, ईरान), डॉ. होसैन जेनाबदी (सिस्तान एवं बलूचिस्तान, ईरान), मोहम्मद जावेद केयाह फरजानेह (जाबोल, ईरान)

**प्रबन्धक**

महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com


**सारांश एवं सूचीपत्र**

मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र दिल्ली, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका सूचीपत्र वाराणसी, सेन्ट्रल न्यूज एजेंसी सूचीपत्र दिल्ली, डी.के.पब्लिकेशन सूचीपत्र दिल्ली, नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ साइंस कम्यूनिकेशन एण्ड इन्फारमेशन रिसोर्स सूचीपत्र दिल्ली, नोएडा कॉलेज ऑफ फिज़िकल एजुकेशन सूचीपत्र गौतमबुद्ध नगर

**पाठकों से**

आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका प्रत्येक दो माह (जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, सितम्बर एवं नवम्बर) पर एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण वाराणसी उ.प्र. भारत द्वारा प्रकाशित की जाती है। एक वर्ष में आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका 6 भाग हिन्दी एवं 6 भाग अंग्रेजी एवं 3 अतिरिक्तांकों के भाग में प्रकाशित की जाती है। डॉक खर्च दर के सम्बन्ध में जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

**वार्षिक पाठक मूल्य दर**

संस्थागत एवं व्यक्तिगत : भारतीय 5000+1000/-डाक शुल्क, एक प्रति 1200+100/- डाक शुल्क, वैदेशिक : 6000+डाक खर्च, एक प्रति 1000+डाक शुल्क

**विज्ञापन एवं निवेदन**

विज्ञापन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रधान सम्पादिका के पते पर संपर्क करें। आन्वीक्षिकी एक स्ववित्तपोषित पत्रिका है,अत: किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग सराहनीय होगा। कृपया अपनी सहयोग राशि चेक अथवा ड्राफ्ट के माध्यम से निम्नलिखित पते पर प्रेषित करें।


**सभी पत्राचार निम्नलिखित पते पर ही प्रेषित करें-**

बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया,लंका वाराणसी उ.प्र. भारत,पिन कोड 221005 मोबाइल नं. 09935784387,
टेलीफोन नं. 0542-2310539.,E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com,www.anvikshikijournal.com

मिलने का समय : 3-5 दिन में(रविवार अवकाश)

**पत्रिका संयोजन** : महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

**प्रकाशन** :एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण

**प्रकाशन तिथि** : 1 जनवरी 2015

**मनीषा प्रकाशन**

(पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/ 2007-2008 बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया, लंका वाराणसी उ.प्र. भारत)

# आन्वीक्षिकी

**भारतीय शोध पत्रिका**

**वर्ष-9 अंक-1 जनवरी-2015**

शोध प्रपत्र

काव्य साहित्य में भगवान विष्णु -डॉ. स्मिता द्विवेदी 1-3
वेदों में उपजीवनीय कृषि विज्ञान का आधार -राजेश दुबे एवं कंचन दुबे 4-12

वेदों में निहित पर्यावरण सम्बन्धी अवधारणायें -मधुलिका सिन्हा 13-16
अद्भुत कला प्रतिभा के धनी जगदीश स्वामीनाथन का समीक्षात्मक अध्ययन -सन्तोष कुमार एवं डॉ. प्रसन्न पाटकर 17-20

शंकराचार्य : स्तोत्र के परिप्रेक्ष्य में -आशीष कुमार 29-31
भारतीय संगीत और दर्शन -डॉ. गीता जोशी 32-38

आसावरी थाट के उत्तरांगवादी राग -डॉ. रूपाली जैन 39-43
हिन्दी साहित्य की प्रासंगिकता : दिशा और दशा -डॉ. मुन्नी देवी भास्कर 44-46

महिला सशक्तिकरण : एक विमर्श -डॉ. अंशुमाला मिश्रा 47-50
सुनीता जैन की कविता में चित्रित स्त्री -डॉ. राधा वर्मा 51-57

नारी विमर्श : एक संक्षिप्त अवलोकन -डॉ. मनीषा शुक्ला 58-60
प्रकृति के हर घटक के संरक्षण का हम व्रत लें -डॉ. अंजली श्रीवास्तव 61-64

महिला सशक्तिकरण : एक संक्षिप्त पूर्वानुलोकन -मौसमी कुमारी 65-68
सम्यक् ज्ञान में तर्क एवं आगम का अवदान-शंकर मत -डॉ. किरण कुमारी 72-75

श्रीहर्ष की ऐतिहासिकता : एक विश्लेषण -डॉ. अर्चना शर्मा 76-80
तुलसीदास का जीवन और "श्रीरामचरितमानस" की कल्याणकारी भावना -अशोक बैरागी 81-84

प्रिंट ISSN 0973-9777, वेबसाइट ISSN 0973-9777

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,1-3
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 18 अक्टूबर 2014

# काव्य साहित्य में भगवान विष्णु

डॉ. स्मिता द्विवेदी*

*लेखक का घोषणा-पत्र*

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *काव्य साहित्य में भगवान विष्णु* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *स्मिता द्विवेदी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

व्याप्यर्थक 'विष्लृ' धातु से विष्णु शब्द की निष्पत्ति होती है तथा परब्रह्म परमात्मा को ही विष्णु कहा जाता है। ''यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति''[1] अर्थात् सम्पूर्ण जगत् की जिससे उत्पत्ति होती है, जिसमें स्थिति होती है और जिसमें विलय होता है वही ब्रह्म है।

अपने गुणों की प्रधानता से ब्रह्म ही रज के सम्बन्ध में ब्रह्मा, तम के सम्बन्ध में रूद्र एवं सत्त्व के सम्बन्ध में विष्णु बन जाता है। अतः अनेक पुरातन और नूतन कविवरों ने उस पर ब्रह्म परमेश्वर विष्णु की महिमा का वर्णन अपने ग्रन्थों में किया है। संस्कृत के कालिदास, माघ, श्री हर्ष, जयदेव इत्यादि कवियों ने राम और कृष्ण के गुण चरित्रों का उल्लेख करके अपनी लेखनी को पवित्र किया है।

श्रीमदभागवत में कहा गया है, ''तव कथामृतं तप्तजीवनं/ कविभिरीडितं कल्मशापहम्। स्रवणमंगलं श्रीमदाततं/ भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः।।''[2] अर्थात् हे प्रभो। इस भूमि पर निवास करने वाले वे मानव परम पुण्यात्मा हैं, जो आपके कलि-कल्मष-विनाशन, श्रुति मधुर कथामृत का पान करते हैं, जिसे सत्कवियों ने अपने विभिन्न दृश्य और श्रव्य काव्यों का मूलाधार बनाया है और जो संतप्तों के लिए जीवन रूप हैं।

महाकवि माघ अपने ग्रन्थ शिशुपालवध में लिखते हैं, ''ध्येयमेकमपथे स्थितं धियः/ स्तुत्यमुतममतीतवाक्पथम्/ आमनन्ति यमुपास्यमादरा/ दूरवर्त्तिनमतीव योगिनः।।''[3]

युधिष्ठिर के समक्ष श्री कृष्ण महात्म्य का वर्णन करते हुए भीष्म पितामह कहते हैं। योगिजन श्री भगवान् को बुद्धि से परे होने पर भी एकमात्र ध्येय बताते हैं, अवर्णनीय होने पर भी सर्वोत्तम स्तवनीय बताते हैं तथा अत्यन्त दूर होने पर भी परमादर से उपासना के योग्य बताते हैं, ''श्रौतमार्गसुखगानकोविद/ ब्रह्मवट्चरणगर्भयुज्जवलम्/ श्री मुखेन्दुसविधेऽपि शोभते/ यस्य नाभिसरसीसरोरूहम्।।''[4] अर्थात् वेद मार्ग के आनन्ददायक मान में निष्णात् ब्रह्माजी ही जिसमें भ्रमर के समान प्रतीत होते हैं

* पूर्व शोध छात्रा, संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत



© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

ऐसा श्री भगवान् के नाभि-सरोवर का उज्जवल कमल श्री लक्ष्मी जी के मुख रूपी चन्द्रमा के सान्निध्य में भी विकसित होता है।

''सत्यवृत्तमपि मायिनं जगद्/ वृद्धमप्युचितनिद्रमर्भकम्/ जन्म विभ्रतमजं नवं बुधा/ यं पुराण पुरुषं प्रचक्षते।।''[5] अर्थात् विद्वान लोग भगवान् को निष्कपट होने पर भी मायावी बताते हैं, सर्वलोक पितामह होने के कारण वृद्धतम होने पर भी वट के पत्र पर सोने वाला शिशु बताते हैं, अजन्मा होने पर भी युग युग में अवतार लेने वाला बताते हैं सर्वप्राचीन होते हुए भी सर्वथा नवीन युवक बताते हैं।

कवि कुल गुरू कालिदास ने अपने रघुवंश में लिखा है, ''बहुधाप्यागमौर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धि हेतवः।। त्वय्येव निपतन्त्येव जाह्वीया इवार्णवे।।''[6] अर्थात् हे भगवान्। आपको प्राप्त करने के लिए अनेक मार्ग शास्त्रों में बताए गए है, किन्तु वे सब भिन्न-भिन्न होते हुए भी आपमें इस प्रकार जा मिलते हैं, जैसे गंगा जी की सभी धाराएं समुद्र में जा मिलती हैं

''त्वय्यावेशितचित्तानां त्वत्समर्पितकर्मणाम्/ गतिस्त्वं वीतरागाणामभूयः संनिवृत्तये।।''[7] अर्थात् हे प्रभो! जो आपका निरन्तर चिन्तन करते हैं, अपने समस्त कर्म आपकों ही समर्पित कर देते हैं उन महात्माओं को आप अपने चरण कमलों की शरण में रखते है। वे फिर संसार बंधन में नहीं पड़ते।

''अनवाप्तमवाप्तव्यं न ते किंचन विद्यते/ लोकानुग्रह एवैको हेतुस्ते जन्मकर्मणोः।।''[8] अर्थात् हे प्रभो! आपके लिए न तो कोई वस्तु अप्राप्त है आर न कोई वस्तु प्राप्तव्य ही है। फिर भी आप जो पृथ्वी लोक में समय-समय पर अवतार ग्रहण करते हैं उसका एक मात्र प्रयोजन आपका संसार पर अनुग्रह करना ही तो है।

महिमानं यदुत्कीर्त्य तव सोह्यिते वचः। श्रमेण तदशक्त्या वा न गुणानामियत्तया।[9] अर्थात् हे भगवान् आपकी महिमा का कीर्तन करके जो हम अब चुप हो रहे है, उसका कारण यह नहीं है कि आपके गुण इतने ही हैं; अपितु यह है कि अब हम थक गए हैं और आपके गुणों का पूर्णरूपेण वर्णन करने की हममें क्षमता ही नहीं हैं।

कवि कुलगुरू श्री हर्ष ने अपने नैषधीयचरित में श्रीमन्नारायण की गुणावली का गान करके अपने कवित्व को सफल बनाया है, यथा - निषधाधिपति नल उपासना करते हुए ईश्वर की स्तुति करते हैं, ''स्वप्रकाश जड़ एष जनस्ते/ वर्णनं यदभिलष्यति कर्तुम्। नन्वहर्पतिमहः प्रति स स्या/ न्न प्रकाशनरसस्तमसः किम्।।''[10] अर्थात् हे प्रभो! आप स्वप्रकाश हैं। मैं जड़ आपकी स्तुति करने की इच्छा करता हूँ। यह ऐसा ही है जैसा अंधकार सूर्यदेव को प्रकाशित करने की इच्छा करे।

''लीलयापि तव नाम जना ये/ गृह्यते नरकनाशकरस्य/ तेभ्य एव नरकैरूचिता भी/ स्ते तु बियतु कथं नरकेभ्यः।।[11]; हे नरक विनाशन! आपके नाम को जो लोग हंसी में, खेल में भी ले लेते हैं, उनसे नरकों को ही डर लगने लगता है। उन्हें नरकों से डर कैसे हो सकता है।

लङ्घयन्नहरहर्भवदाज्ञा/ मस्मि हा विधिनिषेधमयीं यः। दुर्लभं स तपसापि गिरैव/ त्वत्प्रसादमहमिच्छुरलज्जः।।[12] अर्थात् हे प्रभो! श्रुति और स्मृति में लिखे हुए पुण्य कर्म को करते रहते का उपदेश देने वाली एवं पाप कर्म से बचते रहने का उपदेश देने वाली आज्ञाओं का नित्य ही उल्लंघन करने वाला मैं बड़ा निर्लज्ज है, क्योंकि मैं स्तुतिमात्र से आपकी उस कृपा का अभिलाषी हूँ जो ऋषि मुनियों को दुष्कर तपस्याओं के द्वारा भी दुर्लभ है।

कविवर लीलाशुक के अनुसार, ''मालाबर्हमनोज्ञकुन्तलभरां वन्यप्रसूनोक्षितां/ शैलेयद्रवक्ष्पृचित्रातिलकां शश्वन्मनोहारिणीम्। लीलावेणुरवामृतैकरसिकां लावण्यलक्ष्मीमयी। बालां बालतमालनीलवपुषं वन्दे परां देवताम्।।[13] अर्थात् कुसुम माला और मयूरपिच्छ से सुन्दर अलकावली से विभूषित, वनमाला से सुसज्जित, मलयण चन्दन का विचित्र तिल मस्तक पर लगाए हुए, निरन्तर दर्शकों के मन को हरने वाले, लीला के लिए वंशी बजाते समय सर्वत्र रस का संचार करने वाले तमाल के समान नीली कान्ति वाले मधुरमूर्ति पर तत्त्व श्री बाल कृष्ण को मैं प्रणाम करता हूँ।

महाकवि जयदेव ने तो श्री राधामाधव की कथा का सहारा लेकर एक ग्रन्थ का ही सृजन कर दिया। सर्वप्रथम उन्होंने भगवान् की दशावतार वन्दना को प्रस्तुत किया है यथा, ''प्रलयपयोधि जलेधृतवानसि वेदम् विहितवहित्र चरित्रम रवेदम्। केशव धृत मीन शरीर जय जगदीशा हरे।।[14]

इस प्रकार संस्कृत साहित्य पूर्ण रूप से ईश्वर वन्दना या उनकी कथा को अपने में समेटे हुए परिलक्षित होता है। क्योंकि किसी भी कार्य की सिद्धि ईश्वर के आशीर्वाद के बिना सम्भव ही नहीं है। उस स्रष्टा को याद कर श्लोकों को लिखने की यह परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है।

अतः इस प्रकार संस्कृत साहित्य सर्वतः भगवान् विष्णु के गुणगान से भरा पड़ा है।

## सन्दर्भ

[1]तैत्तिरीयोपनिषद् -3/1
[2]श्रीमदभागवात् 10/31/9
[3]शिशुपालवधम् -14/60
[4]शिशुपालवधम्-14/69
[5]शिशुपालवधम्-14/70
[6]रघुवंश - 10/26
[7]रघुवंश - 10/27
[8]रघुवंश - 10/31
[9]रघुवंश - 10/32
[10]नैषधीयचरित- 21/54
[11]नैषधीयचरित- 21/112
[12]नैषधीयचरित- 21/116
[13]कृष्णकर्णामृतम् - 3/66
[14]गीतगोविन्द - 1/1

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,4-12
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 दिसम्बर 2014

# वेदों में उपजीवनीय कृषि विज्ञान का आधार

राजेश दुबे* एवं कंचन दुबे**

*लेखक का घोषणा-पत्र*

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *वेदों में उपजीवनीय कृषि विज्ञान का अधार* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखक *राजेश दुबे एवं कंचन दुबे* घोषणा करते हैं कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेते हैं, क्योंकि हमने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देते हैं। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह हमारी मौलिक कृति है। हम शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देते हैं। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देते हैं।

पृथ्वी पर कृषि विद्या का किस प्रकार विकास हुआ इस विषय में कुछ रोचक वेदों में प्राप्त होते हैं। कृषि को मानवीय कल्याण का साधन माना गया है। यजुर्वेद में राजा का प्रमुख कर्तव्य बताया गया है कि वह कृषि की उन्नति करें, जन-कल्याण करे और धन-धान्य की वृद्धि करें।[1] अथर्ववेद में कहा गया है कि अन्न मनुष्य के जीवन का आधार है। इसके बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता है। इसलिए वेद में अन्न को विश्व की प्रमुख समस्या बताया गया है।[2]

इस समस्या को समाधान करने में देवगण अर्थात् पुरुषार्थ व्यक्ति आगे आये। उनके पास अपनी-अपनी कुल्हाड़ियाँ (परशु) थी। उन्होंने जंगलों को काटकर साफ किया। उनके साथ उनके कुछ सहयोगी परिजन या प्रजाजन भी थे। उन्होंने उपयोगी लकड़ियों (बल्लियों आदि सुद्र) को नदियों के किनारे रख दिया और जहाँ कहीं घास फूंस (कृपीट) थी, उसे जला दिया।[3] इससे ज्ञात होता है कि प्रारम्भिक अवस्था में जंगलों की अधिकता थी। जंगलों को काटा गया, भूमि को समतल बनाया गया और फिर कृषि का कार्य आारम्भ हुआ।

शतपथ ब्राह्मण में पूरे कृषि कार्य को चार शब्दों में वर्णन किया गया है- *1. कर्षण-* खेत की जुताई करना। *2. वपन-* बीज बोना। *3. लवन-* पके खेत की कटाई करना। *4. मर्दन-* मड़ाई करके स्वच्छ अन्न को आाप्त करना।[4]

*कृषि का आविष्कारक*

ऋग्वेद और अथर्ववेद से ज्ञात होता है कि राजा वेन का पुत्र राजा पृथी (पृथु) कृषिविद्या का प्रथम आविष्कारक है। उसने ही सर्वप्रथम कृषि-विद्या के द्वारा विविध आकार के अन्नों के उत्पादन का रहस्य ज्ञात होता है। अथर्ववेद में स्पष्ट रूप से पृथी वैन्य को कृषिविद्या का आविष्कारक माना गया है। वैवस्वत मनु की परम्परा में वेन का पुत्र पृथी राजा हुआ और उसने

* डायरेक्टर, प्रकृति एजुकेशनल एण्ड रिसर्च इन्स्टीट्यूट लखनऊ (उत्तर प्रदेश) भारत
** एकेडमिक कॉउन्सलर, प्रकृति एजुकेशनल एण्ड रिसर्च इन्स्टीट्यूट लखनऊ (उत्तर प्रदेश) भारत



© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

कृषि की और अन्न उत्पन्न किये।[5] कृषि और अन्न पर सभी मनुष्यों का जीवन निर्भर है। इसलिए कृषि विद्यावित् की शरण में सभी लोग जाते हैं।[6]

अथर्ववेद का कथन है कि सरस्वती नदी के किनारे की उपजाऊ भूमि में माधुर्ययुक्त जौ की खेती हुई इसमें इन्द्र कृषि-कर्म के अधिष्ठाता थे और मरुत् देवों ने किसान का काम किया।[7] कृषि के लिए सर्वप्रथम सरस्वती नदी के किनारे की भूमि चुनी गयी। यह भूमि अत्यन्त उपजाऊ थी। कृषि कार्य का नियन्ता राजा था और उसकी देखरेख में प्रजाजनों मरुत ने जौ की खेती की। इससे ज्ञात होता है कि सबसे पहले जौ ही बोया गया था। महाभारत का कृषि के सम्बन्ध में वर्णन है कि- वेन के पुत्र पृथु एक प्रतापी राजा था। जिन्होंने ऊँची-नीची भूमि को सम बनाया। उसने विषम भूमि से पत्थरों को निकाला और उन्हें एक स्थान पर इकत्रित कर दिया।[8] इस प्रकार भूमि को सम बनाकर कृषि की और 17 प्रकार के अन्न उत्पन्न किये।[9] बीज कहाँ से आए, उनका किस प्रकार परीक्षण हुआ, कृषिकर्म का क्रमिक विकास किस आकार हुआ, कृषि के उपकरणों का किसने आविष्कार किया आदि के विषय में कोई सामग्री वेदों में उपलब्ध नहीं है। इन परीक्षणों आदि के द्वारा कृषिकर्म का विकास किया, वे सारे संसार के लिए पूज्य है। कृषि की जो परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है प्रायः वही परम्परा आज भी अक्षुण्ण है। आज केवल उपकरणों का आधुनिकीकरण हो गया है।

## *कृषिकार्य*

कृषि करने के लिए सर्वप्रथम सबसे पहले आवश्यकता भूमि की है। यजुर्वेद में एक प्रश्न किया गया है कि बीज बोने के लिए सर्वप्रथम स्थान क्या है ? इसका उत्तर है कि- भूमि ही बीज बोने के लिए सर्वोत्तम स्थान है।[10] इसके पश्चात् उत्तम बीज की आवश्यकता होती है, जिससे उत्कृष्ट कृषि हो सके। अतः यजुर्वेद का कथन है कि उत्तम अन्नों को देने वाली कृषि करो।[11] कृषि कार्य करने के लिए उत्तम भूमि के साथ ही उत्तम बीज, हल बैल और किसान की आवश्यकता होती है। अथर्ववेद में 9 मंत्रों का एक पूरा सूक्त कृषिकर्म से सम्बद्ध है- इसमें से अधिकांश मंत्र ऋग्वेद और यजुर्वेद में भी प्राप्त होते हैं। अथर्ववेद का कथन है कि :

1. विद्वान लोग सुख प्राप्ति के लिए हलों को जोतते हैं और जूओं को पृथक्-पृथक् बाँधते हैं।[12]
2. हल को तैयार करो, जुए में बैलों को बाँधो। तैयार की हुई भूमि में बीज बोओ। अन्न की उपज हमारे लिए भरपूर हो। कृषि तैयार होने पर उसे हँसुओं से काटकर परिपक्व अन्न घर लावो।[13]
3. हल बज्र के तुल्य कठोर, चलाने में सुखद और लकड़ी की मूठ वाला हो यह हल ही अन्नसमृद्धि के द्वारा गाय, बैल, अश्व आदि को पुष्ट करता है।[14]
4. इन्द्र वृष्टि के द्वारा जुती हुई भूमि को पुष्ट करे और पूषा (सूर्य) उसकी रक्षा करे। वह भूमि हमें प्रतिवर्ष उत्तम रसयुक्त धान्य दे।[15]
5. हल की फाल भूमि को सरलता से खोदे। किसान बैलों के पीछे चलें। हवि से प्रसन्न होकर वायु और सूर्य (शुनासीर) उत्तम फलयुक्त धान्य उत्पन्न करें।[16]
6. बैल सुखी रहें। मनुष्य सुखी रहें। हल सरलता से कृषि करें। रस्सियाँ ठीक ढंग से बाँधी जाँए और चाबुक का ठीक उपयोग किया जाए।[17]
7. हे वायु और सूर्य (शुनासीर) हमारे यश को स्वीकार करो। आकाश में जो जल है, उसकी वृष्टि से पृथ्वी को सींचो।[18]
8. हे जुती हुई भूमि (सीता) हम तेरा अभिनन्दन करते हैं। तू हमारे लिए अनुकूल हो और हमें उत्तम धान्य दे।[19]
9. जब जुती हुई भूमि घी और शहद से सींची जाती है और जलवायु आदि देव अनुकूल होते हैं, तब वह भूमि रसयुक्त उत्तम धान्य देती है।[20]

इस प्रकार इन मंत्रों से कृषि-सम्बन्धी निम्न तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है[21] :

1. बीज बोने से पहले खेत को ठीक ढंग से तैयार किया जाए।
2. कृषि हेतु कृषक, हल और बैलों की आवश्यकता होती है।
3. हल की फाल बहुत अच्छी होनी चाहिए। यह कठोर और तीक्ष्ण हो।
4. बैलों को जूओं में ठीक ढंग से रस्सी से बाँधा जाए, रस्सी मजबूत हो।
5. ठीक ढंग से जुते हुए खेत में ही उत्तम कोटि का बीज बोया जाय।
6. समयानुकूल वर्षा के लिए यश किया जाय।
7. जलवायु की अनुकूलता हो। समय पर वर्षा हो, जिससे उत्तम खेती हो सके।

8. खाद के रूप में घी, दूध और शहद का भी उपयोग किया जाए।
9. खेती तैयार होने पर हँसिया से काटा जाय। उसे खलिहान में साफ करके घरों में ले जाया जाय।
10. कृषि उत्तम कार्य है विद्वान् और राजा भी कृषि कार्य करते थे।
11. कृषि से उत्पन्न अन्न सभी मनुष्यों और पशु-पक्षियों को पुष्ट करता है।
12. पृथिवी अन्नदात्री है, अतः उसका माता के तुल्य आदर करे।

### *भूमि के भेद*

कृषि के योग्य उपजाऊ भूमि के लिए उर्वरा शब्द है। ऐसी भूमि को हल से जोता जाता है और उसमें उत्तम बीज बोया जाता है।[22] उर्वरा भूमि में उत्पन्न होने वाले अन्न को 'उर्वर्य' कहते हैं।[23] जिस भूमि में अन्न नहीं बोते हैं, उसे ढाल कहते हैं। यह बिना जुती हुई भूमि खलिहान का काम करती है। इसमें कृषि से उत्पन्न अन्न को साफ किया जाता है और भूसी आदि हटाकर भंडारण के योग्य बनाया जाता है।[24] खलिहान में रखे हुए अन्न के लिए 'खल्य' शब्द है।[25] खलिहान में नमी आदि के कारण कुछ कीड़े भी अन्न में लग जाते हैं, इन्हें 'खलज' कहा गया है और इनको मारने का विधान है।[26] जो भूमि कृषि के योग्य नहीं है उसे ऊषर या इरिण (ऊसर) कहते हैं।[27] इसमें क्षारमृतिका (खारी मिट्टी) होती है। खारी मिट्टी के कणों के लिए शतपथ ब्राह्मण में 'ऊषरसिकता' शब्द है।

### *बीज, भूमि और वर्षा*

ऋग्वेद का कथन है कि उत्कृष्ट अन्न के लिए उत्तम कोटि का बीज बोना चाहिए। अतएव किसान उत्तम बीज बोते हैं।[28] अथर्ववेद में अन्न के लिए उत्तम भूमि और वर्षा की आवश्यकता बताई गयी है। वर्षा से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है। यह अन्न ही सारी प्रजा के जीवन का आधार है।[29] इस मंत्र में भूमि को पर्जन्य की पत्नी अर्थात् वर्षा द्वारा पालित और 'वर्षमेदस्' अर्थात् वर्षा से उर्वराशक्ति की वृद्धि का उल्लेख है।

### *बीज बोने के प्रकार*

यजुर्वेद में कहा गया है कि 'कृते योनौ' भू-परिष्कार के बाद ही बीज बोया जाय।[30] बीज बोने से पहले भू-परिष्कार आवश्यक है, अर्थात् भूमि से घास-फूंस, कंकड़-पत्थर आदि को निकाला जाय और भूमि का सम किया जाय। अथर्ववेद का कथन है कि बीज बोने से जुती हुई भूमि में खाद के रूप में घी, दूध और मधु का आयोग किया जाय। इससे भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ती है।[31] बीज के विषय में निर्देश है कि बीज को पानी में भिगोया जाय और उसमें ओषधियों को भी डाला जाय इससे बीज में ओषधियों की शक्ति आ जाएगी और उसकी गुणवत्ता बढ़ जायेगी।[32]

कौटिल्य अर्थशास्त्र में 'सीताध्यक्षः' प्रकरण में कृषि-सम्बन्धी अनेक उपयोगी बातें दी हैं। कौटिल्य का कथन है कि-धान के बीजों को सात दिन तक रात की ओस और दिन की धूम में रखना चाहिए। मूंग, उड़द आदि के बीजों को इसी प्रकार तीन दिन-रात या पाँच दिन-रात ओस और धूप में रखना चाहिए।[33] बोते समय बीज की पहली मुट्ठी भरकर इस मंत्र को पढ़कर बीज बोयें, 'प्रजापतये काश्यपाय देवाय नमः सदा। सीता में ऋध्यतां देवी बीजेषु च धनेषु च।।'

### *धूम और मेथ*

कृषि कार्य करने के लिए मेघ और मेघ से वर्षा का होना आवश्यक माना गया है। ऋग्वेद में उल्लेख है कि यक्ष से मेघ (बादल) बनते हैं और वे मेघ आकाश में रहते हैं और वर्षा के रूप में भूमि पर लौटते हैं।[34] सायण ने मंत्र का अर्थ किया है, यक्ष इन्द्र (मेघ) को बढ़ाता है। वे मेघ अन्तरिक्ष में पहुँच कर शयन करते हैं और भूमि पर वर्षा के रूप में लौटकर आते हैं। यजुर्वेद का कथन है कि सूर्य की किरणें ही वृष्टि के मुख्य कारण हैं। वे समुद्र से जल को धूप या भाप के रूप में ऊपर खींचती है

और उसी से वृष्टि होती है।[35] यक्ष को वर्षा का कारण बताते हुए यजुर्वेद में कहा गया है कि- अग्निदेव इन्द्र (मेघ) को बढ़ाते हैं अर्थात् यक्ष से मेघ बनते हैं। यही भाव गीता में भी कहा गया है कि यक्ष से बादल बनते हैं। बादलों से वृष्टि और उससे अन्न होते हैं। अन्न से ही प्राणिमात्र की उत्पत्ति होती है।[36]

यजुर्वेद में कथन है कि सूर्य कि किरणों से समुद्र का जल धूम या भाप के रूप में अन्तरिक्ष में जाता है। उसमें आकाश का संश्लेषण होता है और वह बादल बनता है। वह वर्षा के रूप में पृथिवी को पुष्ट करता है।[37] यजुर्वेद में मेघ के निर्माण का क्रम दिया गया है कि वायु के द्वारा समुद्री जल भाप के रूप में ऊपर जाता है उसका प्रथम रूप धूम या भाप है। वह भाप शीतलता के कारण कठोर होकर पहले अम्र अर्थात् जल की छोटी बूँद के रूप में परिवर्तित होता है। फिर इनसे छोटी बूँदों वाले बादलों का समूह या संघात मेघ बनता है। इससे वृष्टि होती है।[38]

### *कृषि और यज्ञ*

वेदों के लिए यज्ञ को बहुत महत्त्व दिया गया है। यज्ञ को विष्णु का रूप माना गया है। उसे संसार का केन्द्र या नाभि कहा गया है।[39] सारा सृष्टिचक्र यज्ञ के द्वारा चल रहा है। यह यज्ञ प्रकृति में स्वाभाविक रूप से हो रहा है। इसमें वसन्त ऋतु घी का कार्य कर रहा है, ग्रीष्म ऋतु समिधा और शरद् ऋतु हवन सामग्री (हवि) का।[40] यजुर्वेद के 18वें अध्याय में 'यज्ञेन कल्पन्ताम्' कहते हुए 1 से 27 मंत्र तक यज्ञ से होने वाले लाभों का विस्तृत वर्णन है। इसमें कृषि से सम्बद्ध ये तथ्य दिये गये हैं :

1. यज्ञ से अन्न और फल-फूल की वृद्धि।
2. बीज का अंकुरित होना और फल धारण करना। हल से धान्य की उत्पत्ति और अच्छी फसल के बाधक तत्वों का विनाश।[41]
3. उत्तम कृषि और वृष्टि का होना।
4. अक्षय अन्न और धान्य आदि की प्राप्ति।[42]
5. यज्ञ से जल और अग्नि की प्राप्ति। उससे वृक्ष-वनस्पतियों की वृद्धि।[43]
6. यज्ञ के द्वारा इन्द्र (वर्षा) और मरूत् (वायु) का होना। कृषि के लिए जिस प्रकार वर्षा की आवश्यकता है, उसी प्रकार वायु की आवश्यकता है।[44]
7. यज्ञ के द्वारा अग्नि की ऊष्मा सूर्य की ऊष्मा सूर्य की किरणों का प्रकाश और उतम भूमि का प्राप्त होना।[45] कृषि के लिए उत्तम भूमि, पृथिवी की आन्तरिक अग्नि या ऊष्मा और सूर्य का प्रकाश आवश्यक है।

### *कृषि के साधन*

वेदों में कृषि के साधनों का वर्णन मिलता है।

1. *हल :* हल के लिए लांगल और सीर शब्द है।[46]
2. *सीता, फाल :* हल के नुकीले भाग के लिए सीता और फाल शब्द का आयोग हुआ है।[47]
3. *ईषा, युग वस्त्रा :* हल में जो लम्बी लकड़ी (हलस्) लगी रहती है, उसके लिए ईषा शब्द है। इसके निचले भाग में लोहे की फाल होती है। इसके ऊपर जुआ रखा जाता है। हलस और जुए को रस्सी (वस्त्रा) से बाँधा जाता है।[48]
4. *अष्ट्रा :* किसान जिस चाबुक या छड़ी से बैलों को हाँकता है, उसके लिए अष्ट्रा शब्द है।[49]
5. *बैल :* बैल के लिए 'वाह' शब्द का प्रयोग होता है।[50] इसलिए इसको चलाने वाले को हर-वाह कहते हैं। अथर्ववेद और काठकसंहिता में 6, 8 और 12 जुओं वाले बड़े हलों का वर्णन प्राप्त होता है। इस प्रकार 12, 16 और 24 के बैल वाले बड़े हल भी काम में आते थे।

### *सिंचाई के साधन*

ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और तैत्तिरीय संहिता में सिंचाई के साधनों का पर्याप्त 4 वर्णन मिलता है :

1. *दिव्या :* वर्षा का जल। वर्षा के जल से सिंचाई की जाती है। वेद में इसे दिव्याः कहते हैं।
2. *खनित्रिमाः* कुओं आदि का जल। ऋग्वेद में खनित्रिमाः शब्द का प्रयोग हुआ है जो पहले इससे सिंचाई के लिए उपयोग में लाया जाता है।
3. *स्वयंजाः* अथर्ववेद में स्वयंजाः से सिंचाई होती थी, नहरों से सिंचाई का उल्लेख प्राप्त होता है।[51]
4. *समुद्रार्थाः* समुद्र से मिलने वाली नदियों का जल।[52] नहरों, नदियों, कुआँ, तालाब, जलाशय और स्रोतों का जल से सिंचाई की जाती थी। आज भी कृषि के लिए इनका उपयोग किया जाता है।

## *फसलें*

तैत्तिरीय संहिता में अन्नों के कटने के हिसाब से चार फसलों का उल्लेख मिलता है।[53] (1) ग्रीष्म में काटने वाली- इसमें जौ, गेहूँ मुख्य है। पहले भी कृषि कार्य होता था और आज भी है। (2) वर्षा में कटने वाली, (3) शरद में कटने वाली इसमें धान मुख्य है। (4) हेमन्त और शिशिर में कटने वाली। इसमें माष (उड़द) और (तिल) तिलहन मुख्य है। आजकल ग्रीष्म में कटने वाली फसल, रबी और शरद् में कटने वाली फसल को 'खरीफ' कहते हैं।[54]

*उर्वरक :* ऋग्वेद के एक मंत्र में उर्वरक के द्वारा कृषि की उपज में वृद्धि के लिए उल्लेख प्राप्त होता है।[55] इस मंत्र में लिखा है कि उर्वरक उत्कृष्ट उपज दें। उर्वरक के लिए 'क्षेत्रसाधस्' शब्द है जिसका अर्थ है- क्षेत्र की उत्पादन शक्ति को बढ़ाने वाला।

## *पशुपालन*

ऋग्वेद और यजुर्वेद में पशु-पालन और पशु-संवर्द्धन पर विशेष बल दिया गया है। जिससे कृषि कार्य में इनका पूरा सहयोग होता है। ऋग्वेद का कथन है पशु-संवर्द्धन के लिए व्रज गोशाला बनवाओ।[56] इसमें ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे गाय अश्व आदि पशु इनमें पूरी सुविधा के साथ रह सकते हैं। व्रज मनुष्यों की दुग्ध आदि की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। अतः उन्हें 'नृपाणः' (दुग्धादि का दाता) कहा गया है।[57] प्राचीन काल में व्रज दुग्धादि की पूर्ति के साधन थे। अतः वे एक प्रकार से डेयरी फार्म का काम करते हैं। व्रज गोशाला के रूप में होते थे, अतः उन्हें गोष्ठ कहते हैं।[58] यजुर्वेद में गोशाला के लिए गोष्ठान शब्द भी आया है। यह घिरे हुए बाड़े के रूप में होता था, अतः इसे व्रज (बाड़ा) कहते हैं। व्रज पशुपालन होते थे। इनमें बैल, गाय, अश्व आदि पशु भी बाँधे जाते थे।[59] वेदों में गाय का बहुत महत्त्व बताया गया है। गाय को विराट् ब्रह्म का रूप माना गया है। इसमें सभी देवों का निवास बताया गया है।[60] ''गावो भगः'' कहकर गाय को सौभाग्य का रूप में बताया गया है। गाय दूध घी एवं मधुर पदार्थों को देती है। गाय का महत्त्व बताते हुए कहा गया है कि ये कृष को हृष्ट-पुष्ट और निःस्तेज को तेजस्वी बना देती है, अतः सभाओं में भी इसका गुणगान होता है।[61] घर में गाय का होना सौभाग्य का प्रतीक बताया गया है।

प्राचीन समय में भी कृषि के साधन उपलब्ध थे और आज भी सभी आवश्यक पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है। जैसे- (1) उर्वरा भूमि, (2) उत्तम बीज, (3) धूप, (4) वायु, (5) जल, (6) खेत की सुरक्षा और कृषि नाशक कीटादि का निवारण, (7) खाद। वेदों में इसके लिए भी स्फुट निर्देश प्राप्त होते हैं :

1. *उर्वरा भूमि;* कृषि के लिए सर्वप्रथम आवश्यक उर्वरा भूमि की है, उर्वरा भूमि में बोया गया बीज ठीक ढंग से निकलेगा और बढ़ेगा। अथर्ववेद का कथन है कि उर्वरा भूमि में बोया गया बीज ठीक ढंग से निकलता है।[62] अतएव उर्वरा भूमि को नमस्कार किया गया है।[63]
2. *उत्तम बीज;* भूमि के पश्चात् बीज का महत्त्व है। बीज उत्तम होगा तो कृषि भी अच्छी होगी। अतएव यजुर्वेद में कहा गया है कि भूमि को ठीक ढंग से परिष्कृत करके बीज बोना चाहिए।[64] ऋग्वेद का कथन है कि किसान शुद्ध भूमि में बीज बोते हैं।[65]
3. *धूप;* कृषि के लिए धूप अनिवार्य तत्त्व है। यदि पेड़ों को धूप नहीं मिलेगी तो वे नहीं बढ़ेंगे। सूर्य की किरणों से ही पेड़ों में ऊर्जा आती है और उन्हें ग्लूकोज के रूप में भोजन मिलता है। यजुर्वेद में सूर्य की किरणें बीजों की उत्पत्ति और उनकी वृद्धि के कारण हैं।[66] एक तरफ सूर्य की किरणों से ऊर्जा प्राप्त हो, दूसरी तरफ भूमि के अन्दर विद्यमान उष्मा (ताप) का सहयोग मिले। सूर्य की किरणों न केवल ऊर्जा देती है, अपितु कृषि के लिए अनिवार्य वृष्टि का भी कारण है।[67]
4. *वायु;* कृषि के लिए वायु की भी अत्यन्त आवश्यकता है। वायु, विशेष रूप से कार्बन डाईऑक्साइड ($CO_2$) की आवश्यकता होती है। वायु ($CO_2$), सूर्य की किरणें, जल और वृक्ष का हरिततत्त्व (अवितत्त्व या Chlorophyll) इन चारों के संश्लेषण से (Phatosynthesis)

(आकाश-संश्लेषण) क्रिया होती है। इससे सभी वृक्ष-वनस्पतियों को एक ओर ग्लूकोज मिलता है और दूसरी ओर Oxygen (ऑक्सीजन, प्राणवायु) मिलती है।[68] यजुर्वेद में कृषि हेतु आवश्यक जल और वायु का एक साथ उल्लेख है। अथर्ववेद के एक मंत्र में स्पष्ट रूप से अवितत्त्व रक्षक तत्त्व Chlorophyll का उल्लेख है और इसके विषय में कहा गया है कि इसके कारण ही वृक्षों और वनस्पतियों में हरियाली है।[69]

5. *जल और वर्षा;* कृषि के लिए यथासमय वर्षा का होना अत्यन्त आवश्यक है। साथ ही सिंचाई के लिए अन्य साधनों- कुआँ, तालाब आदि से जल की सुविधा आवश्यक है। अतएव यजुर्वेद में राष्ट्रीय प्रार्थना 'आ ब्रह्मन्' में यथासमय वर्षा की प्रार्थना की गयी है।[70] अथर्ववेद में भूमि को 'पर्जन्यपत्नी' और वर्षमेदम् कहा है।[71] इसका अभिप्राय यह है कि मेघ और वृष्टि पृथ्वी के पालक हैं। वर्षा से पृथ्वी को जीवनी शक्ति मिलती है। भूमि कृषि के योग्य हो जाती है। 'वर्षमेदस्' का अभिप्राय है कि वर्षा से पृथ्वी की शक्ति बढ़ती है और वह अनुप्रमाणित होती है। यजुर्वेद में कृषि के साथ ही वृष्टि का उल्लेख प्राप्त होता है।[72] इसका तात्पर्य यह है कि कृषि और वृष्टि परस्पर सापेक्ष है। बिना वर्षा के कृषि सफल नहीं हो सकती है। उत्तम कृषि और उपज के लिए यजुर्वेद में जल और ओषधियों के उपयोग का निर्देश है।[73]
6. *खाद;* वेदों में कृषि को उपजाऊ बनाने के लिए खाद के उपयोग का उल्लेख है। खाद के लिए करीष, शकन् और शकृत् (गोबर) शब्दों का प्रयोग किया गया है। यह खाद प्रायः गाय या बैल के गोबर की खाद होती थी। अथर्ववेद में खाद को फलवती कहा है।[74] अत्युत्तम खेती के लिए घी, दूध, शहद, और ओषधियों के रस के मिश्रण से बनी खाद डालने का विधान है।[75] घी, दूध और शहद आदि के मिश्रण से बनी खाद डालने से उत्तम कृषि होने के कुछ उदाहरण श्री श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने अपने अथर्ववेद भाष्य में प्रस्तुत किया है। कौटिल्य के समय में गोबर, हड्डी के चूरे आदि का खाद के रूप में प्रयोग होता था। कौटिल्य ने ईख के पोरों की कटी जगह पर शहद, घी या सूअर की चर्बी लगाने का विधान किया है। इसी प्रकार कन्दफलों, कपास, कटहल, आम आदि के लिए अलग-अलग खाद उपयोगी बताई है। इनके बीजों को गोबर, घी, शहद एवं हड्डी के चूरे के साथ मिलाकर बोना उपयोगी बताया है।[76]
7. *सुरक्षा;* उत्तम भूमि और अच्छे बीज आदि के होने पर भी यदि खेत की सुरक्षा नहीं की जाएगी तो कृषि उत्पाद ठीक नहीं हो सकता, अतः सुरक्षा अत्यावश्यक है। सुरक्षा से ही उत्तम कृषि हो सकेगी। यजुर्वेद में कहा गया है कि, हमारी कृषि उत्तमफल से युक्त हो।[77] यजुर्वेद में अन्यत्र एक मंत्र में चार शब्दों से कृषि की प्रक्रिया को स्पष्ट किया गया है- सु, आसु, सीर और लय।[78] सू का अर्थ है- उत्पादन की क्षमता वाला अर्थात् उत्तम बीज। प्रसु का अर्थ है- प्रसव, उत्पादन और फलयुक्त धान्य अर्थात् उत्तम उत्पादन। सीर का अर्थ है- हल अर्थात् हल के प्रयोग से उत्पन्न धान्य। लय का अर्थ है- कृषि नाशक तत्त्वों को नष्ट करना। इस प्रकार कृषि के लिए आवश्यक है- उत्तम बीज, उत्तम उत्पाद, सफल कृषि और कृमि कीट आदि का नाशन है।

### *कृषि नाशक तत्त्व*

कृषि को हानि पहुँचाने वाले तत्त्वों को 'ईति' कहते हैं। अथर्ववेद के एक सूक्त तीन मंत्रों में कृषि-नाशक तत्त्वों का उल्लेख है और इन्हें सर्वथा नष्ट करने का विधान है। मंत्र का कथन है कि तर्द (कृषि के नाशक कीट पतंगों) को नष्ट करो। बिल में रहने वाले चूहों को नष्ट करो। इनका सिर और इनकी पीठ तोड़ दो। इनका मुँह बाँध दो, जिससे ये जौ को न खा सके। इस आकार धान्य की रक्षा करो।[79] अन्य दो मंत्रों में पतंग और वधापति शब्दों से कीड़ों और टिड्डियों को नष्ट करने का विधान है जिससे ये जौ आदि की खेती को हानि न पहुँचा सके। 'व्यद्वर' शब्द से विशेष हानि पहुँचाने वाले कीट आदि का उल्लेख है। इनके लिए कहा गया है कि- 'सर्वान् जम्भयामसि' इन सबको पूर्णतया नष्ट करते हैं।[80] इस प्रकार इन मंत्रों में तर्द, आखु, पतंग, जभ्य, उपक्वस, तदापति, वधापति आदि शब्दों से चूहों, कीट-पतंगे और टिड्डी आदि सभी कीटनाशक तत्त्वों को नष्ट करने की शिक्षा दी गयी है। इसके अतिरिक्त अतिवृष्टि और अनावृष्टि को भी खेती के लिए हानिकारक होने का संकेत किया गया है।

### *मानवीय जीवन का महत्त्व*

कृषि प्राचीन काल में भी बहुत महत्त्वपूर्ण रहा और आज भी बहुत महत्व है। क्योंकि चाहे व्यक्ति कितना भी अमीर हो जाय वह अन्न, फल ही खायेगा चाहे जिस रूप में ग्रहण करे। मानव का जो जीवन है वह अन्न पर ही निर्भर है। अन्नों की प्राप्ति, कृषि से ही होती है अतः कृषि मानव जीवन का आधार है। सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही अन्न की समस्या उत्पन्न हुई। जिससे इसके निवारण के लिए कृषि का आविष्कार हुआ। पहले कृषि-कार्य गौरव का कार्य माना जाता था, पर आज तो लोग नौकरी की महत्ता को स्वीकार करते हैं। नौकरी करने वाला भी अन्न को ही ग्रहण करता है। इसलिए आज भी कृषि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय है। कवि और विद्वान भी पहले कृषि-कार्य करते थे। अथर्ववेद के एक मंत्र में वर्णन मिलता है- विराट ब्रह्मा जब मनुष्यों

के पास पहुँचा तो उन्होंने कृषि और सस्य (अन्न) प्राप्त किया। कृषि और अन्न से ही मनुष्य का जीवन चलता है। जो कृषि विद्या में निपुण होते थे उन्हें कृष्टराधि और उपजीवनीय (सफल आजीविका वाला) कहा जाता था। कृषि विशेषज्ञों Agricultural specialist कहते हुए उसे अन्नविद् नाम देते हुए कहा गया है कि सर्वप्रथम उन्होंने कृषि के नियम (याम) बनाये थे। वेदों में कृषि को मानवीय कल्याण का साधन माना गया है। जिससे सभी एक दूसरे की पूर्ति और पालन होता है। जब तक जीवन है अन्न और जल ग्रहण करना ही पड़ेगा। विश्व के सभी प्राणी इसको सहर्ष स्वीकार करते हैं।

## संदर्भ सूची


[1]यद यामं चक्रः- अन्नविदः। अथर्ववेद- 6.116.1

[2]*अथर्ववेद* 3.17.1

[3]देवास आयन् परशूरबिभ्रन्, वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन्। नि सुद्रवं दधवो वक्षणासु, यत्रा कृपीटमनु तद दहन्ति। ऋग्वेद 10. 28.8

[4]कृषन्तः, वपन्तः लुनन्तः मृणन्तः। शत0 1.6.1.3

[5]तस्या मनुवैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पालम्। तां पृथी वैन्योऽधोक, तां कृषिं सस्यं चाधोक्।। अथर्ववेद 8.10 (4) 10-11

[6]ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या उपजीवन्ति, कृष्टराधिरूपजीवनीयों भवति।। अथर्व0 8.10 (4) 12

[7]इमं देवां मधुना संयुतं यवं, सरस्वत्यामधि मणावचर्कृषुः। इन्द्र आसीत् सीरपतिः शतक्रतुः कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः।। अथर्ववेद 6.30

[8]राजा पृथुर्वैन्यः प्रतापवान्। समतां वसुधायाश्च स सम्यगुदपादयत्। वैषम्यं हि परं भूमेरासीदिति च नः श्रुतम्। उज्जहारं ततो वैन्यः शिलाजालान् समन्ततः।। महा0 शान्ति0 59.113-115

[9]तेनेयं पृथिवी दुग्धा सस्यानि दश सप्त च।। शान्तिपर्व 59.124

[10]कि वावपनं महत्। भूमिरावपनं महत्। यजुर्वेद 23.45-46

[11]सुसस्या कृषीस्कृधि। यजुर्वेद 4.10

[12]सीरा युत्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नयौ। अथर्ववेद 3.17.1 / ऋग्0 10.10.1.4/ यजुर्वेद 12.67

[13]युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वषतेह बीजम्। विराजः श्नुष्टिः सभरा असन्नो, नेदीय इत् सृण्यः पक्वया यवन्।। अथर्व0 3.17.2, ऋग्वे0 10.101.3, यजु0 12.68

[14]लांगलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरू0। अथर्व0 3.17.3, यजु0 12.71

[15]इन्द्र सीतां नि गृहणातु, तां पूषाऽभि रक्षतु। सा नः पयस्वती दुहाम्, उत्तरामुत्तरां समाम्। अथर्व0 3.17.4, ऋग् 4.57.7

[16]शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमि, शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान्। शुनासीरा हविषा तोशमाना, सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै।। अथर्व0 3.17.5, ऋग्0 4.57.8, यजु0 12.69

[17]शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लांगलम्। शुनं वरत्रा बध्यन्तां, शुनमष्ट्रामुदिङ्गय।। अथ0 3.17.6, ऋग् 4.57.4

[18]शुनासीरेह स्म मे जुषेथाम्। यद् दिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुप सिञ्चतम्।। अथ0 3.17.7, ऋग्वे0 4.57.5

[19]सीते बन्दामहे त्वार्वाची सुभगे भव। यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः।। अ0 3.17.8, ऋ0 4.57.6

[20]घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैदेवैश्नुमता मरुद्भिः। सा न सीते पयसाऽभ्याववृत्स्व, उर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना।। अर्थ0 3.17. 9, यजु0 12.70

[21]आचार्य कपिलदेव द्विवेद- *वेदों में विज्ञान,* पृ0 146

[22]यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति। अ0 10.6.33

[23]नम उर्वर्याय। यजु0 16.33

[24]खले न पर्षान्। ऋग्0 10.48.7

[25]खल्याय च। यजु0 16.33

[26]खलजा.....तान् नाशय। अथर्व0 8.6.15

[27]असौ च या न उर्वरा। ऋग0 8.91.6; ऊषरं क्षेत्रम् (सायण)। इरिणानु। अथर्व0 4.15.12

[28]वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः। ऋग् 10.94.13

[29]यस्यामन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः। भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षभेदसे।। अथर्व0 12.1.42
[30]कृते योनौ वपतेह बीजम्। यजुर्वेद0 12.68
[31]घृतेन सीता मधुना समज्यताम्, ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमाना। यजुर्वेद 12.70, अथर्व0 3.17.9
[32]सं वपामि समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन। यजुर्वेद 1.21
[33]तुषारपायनम् उष्णशोषणं चासप्तरात्रादिति धन्यबीजानाम्। त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा कोशीधान्यानाम्। कौ0 अर्थ0, पृ0 242
[34]यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् यद् भूमिं व्यवर्तयत्। चक्राण ओपशं दिवि। ऋग्वेद 8.14.5
[35]सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये। यजुर्वेद 38.6
[36]अन्नाद भवन्ति भूतानि, पर्जन्याद् अन्नसंभवः। यज्ञाद् भवति पर्जन्यः।। गीता0 2.14
[37]दिवं ते धूमो गच्छतु स्वज्योतिः पृथिवी भस्मनापृण। यजुर्वेद 6.21
[38]वाताय स्वाहा, धूमाय स्वाहा, अभ्राय स्वाहा, मेघाय स्वाहा। यजुर्वे0 22.26
[39]यज्ञो वै भुवनस्य नाभिः। तैत्ति0 ब्रा0 3.9.5.5
[40]वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इहमः शरद हविः। यजु0 31.14
[41]सूश्च मे आसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे। यजु0 18.7
[42]कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे। अक्षितं च मेऽन्नं च मे। यजु0 18.9-10
[43]यजुर्वेद 18.14
[44]यजुर्वेद 18.17
[45]अग्निश्च में धर्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्यश्च मे, पृथिवी च मे। यजुर्वे0 18.22
[46]अथर्व0 3.17.1-3
[47]अथर्व0 3.17.5-8
[48]अथर्ववेद 2.8.4, 3.17.6
[49]अथर्व0 3.17.6
[50]अथर्व0 3.17.6
[51]अथर्व0 20.17.7
[52]ऋग्वेद 7.49.2
[53]यवं ग्रीष्माय, वीहीन् शरदे0। तैत्ति0 7.2.10.2
[54]द्विः संवत्सरस्य सस्यं पच्यते। तैत्ति0 5.1.7.2
[55]ते नो व्यन्तु वार्य देवता क्षेत्रसाधसः। ऋग्वेद 3.8.7
[56]व्रजं न पशुवर्धनाय। ऋग् 9.94.1
[57]व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणः। ऋग्वेद 10.101.4
[58]गोष्ठः, अथर्व0 3.14.5
[59]अथर्व0 7.53.5
[60]अथर्व0 9.7.1 से 26
[61]अथर्व0 4.21.6
[62]यथा बीजमुर्वरायां कृष्टे फालेन रोहति। अ0 10.6.33
[63]नम उर्वयाय। यजु0 16.33
[64]कृते योनौ वपतेह बीजम्। यजु0 12.68
[65]वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः। ऋग्0 10.94.13
[66]तस्यां नो देवः सविता धर्म साविषत्। यजु0 18.30
[67]सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये। यजु0 38.6
[68]वेदों में विज्ञान- डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी, पृ0सं0 151
[69]अविवै नाम देवता ऋतेनास्ते परीवृता। तस्या रूपेणेमे वृक्षा हरिता हरितस्रजः।। अथर्व0 10.8.31
[70]निकामे निकामे न पर्यन्यो वर्षतु। यजु0 22.22

[71]भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमेदसे। अ0 12.1.42

[72]कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे। यजु0 18.9

[73]स मा सृजामि पयसा पृथिव्याः, स मा सृजामि- अद्भिरोषधीभिः। यजुवे0 18.35

[74]करीषिणी फलवती स्वधाम्0 अथर्ववेद 19.31.3

[75]घृतेन सीता मधुना समज्यताम्।.....पयसा पिन्वमाना। यजुर्वेद 12.70; स वपामि समाप ओषधीभिः समोषधयो रसेन। यजुर्वे0 1.21

[76]आशुष्ककटुमत्स्यान् च स्नुहिक्षीरेण पाययेत्। कौटि0 अर्थ0, पृ0 242

[77]फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्। यजु0 22.22

[78]सूश्च मे आसूश्च मे सीरं च मे लयश्च मे। यजु0 18.7

[79]हतं तर्द तसमङ्कमाखुम् अश्विना छिन्तं शिरः.....। अथाभयं कृणुतं धान्याय। अर्थ0 6.50.1

[80]तर्द है पतगं है जभ्य हा उपक्वस। अर्थ0 6.50.2

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,13-16
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 17 दिसम्बर 2014

# वेदों में निहित पर्यावरण सम्बन्धी अवधारणायें

मधुलिका सिन्हा*

*लेखक का घोषणा-पत्र*

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *वेदों में निहित पर्यावरण सम्बन्धी अवधारणायें* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मधुलिका सिन्हा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

समकालीन विश्व के सर्वाधिक चर्चित और चिन्तनीय विषयों में पर्यावरण और पर्यावरण संरक्षण ने प्रमुखता से स्थान प्राप्त किया है। प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रमुख स्रोतों के रूप में वैदिक साहित्यों में पर्यावरण से संबंधित विस्तृत उपबंध दिए गए हैं और इस विषय पर पर्याप्त सामग्री मिलती है। पृथ्वी, जल, वायु और आकाश की शुद्धि और इनको प्रदूषण से बचाने का अनेक मंत्रों में निर्देश है। पर्यावरण के संघटक तत्व, विश्व के रक्षक तत्व, पर्यावरण की शुद्धि, पर्यावरण संरक्षण की विधियां इत्यादि विषयों पर विस्तार से चर्चा की गई है।

अर्थववेद में ही सर्वप्रथम पर्यावरण के तीन संघटक तत्वों का वर्णन है- जल, वायु और औषधि। ये पृथ्वी को घेरे हुए हैं और मानवमात्र को प्रसन्नता देते हैं, अतः इन्हें 'छन्दस्' कहा गया है। ''त्रीणि छन्दांसि कवयो वि येतिरे/ पुरूरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम्। आपो वाता ओषधयः/ तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि।।''[1]

साधरणतया यह समझा जाता था कि जल और वायु ही पर्यावरण के प्रमुख घटक है, परन्तु इस मंत्र में स्पष्ट रूप से औषधियों को भी पर्यावरण का एक प्रमुख घटक माना गया है। जिस प्रकार जल और वायु के बिना जीवन असंभव है, उसी प्रकार वृक्ष-वनस्पतियों के बिना भी। अतः सर्वप्रथम वनस्पतियों के महत्व पर प्रकाश डालने का श्रेय वेदों को ही है।

वायु मानव जीवन का आधार है। इसलिए जीवन रक्षा हेतु वायु-प्रदूषण के सभी तत्वों का नियंत्रण आवश्यक है। अर्थववेद में 'आपो वाता ओषधयः' कहकर यह निर्देश दिया गया है कि पर्यावरण की रक्षा हेतु वायु की शुद्धि पर ध्यान देना अनिवार्य है। अर्थववेद में ही वायु और सूर्य के महत्त्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि तुम दोनों संसार के रक्षक हो। तुम अन्तरिक्ष में व्याप्त हो। तुम ही सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करते हो।[2]

'युवं वायो सविता च भुवनानि रक्षथः।'[3]

* [यू.जी.सी.-जे.आर.एफ.] शोध छात्रा, इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय पटना (बिहार) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)



© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

वायु के महत्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वायु में दो गुण होते हैं- प्राणवायु के द्वारा मनुष्य में जीवनशक्ति का संचार करना और अपान वायु के द्वारा सभी दोषों को शरीर के बाहर करना। इसलिए वायु को विश्वभेषज कहा गया है, क्योंकि यह सभी रोगों और दोषों को नष्ट करता है।[4]

वायु के महत्व पर ऋग्वेद में कहा गया है कि हे वायु, तुम्हारे पास अमृत का खजाना है। तुम सब रोगों की औषधि हो।[5] ऋग्वेद के एक महत्त्वपूर्ण मंत्र में निर्देश है कि वायु में अमृत अर्थात् ऑक्सीजन है। उसे नष्ट न होने दें। इसका अभिप्राय है कि ऐसा कोई कार्य न करें, जिससे वायु में ऑक्सीजन की कमी हो।[6]

ऋग्वेद और अथर्ववेद में भूमि के चारों ओर विद्यमान ओजोन की परत का उल्लेख है। ऋग्वेद में ओजोन की परत के लिए 'महत्त् उल्ब' शब्द आया है और उसे स्थविर अर्थात् स्थूल या मोटी परत कहा है। अथर्ववेद में इस ओजोन की परत का रंग हिरण्यय अर्थात् सुनहरी बताया गया है। उल्ब शब्द गर्भस्थ शिशु के ऊपर ढकी हुई झिल्ली के लिए आता है। यहां पर पृथ्वी को एक गर्भस्थ शिशु मानते हुए उसकी रक्षा के लिए विद्यमान ओजोन की परत को महान और स्थूल उल्ब कहा गया है। ओजोन परत को हानि पहुंचाना उसी प्रकार संकटकारी है, जैसे गर्भस्थ बालक की झिल्ली से छेड़-छाड़ करना। 'महत् तदुल्बं स्थविरं तदासीद,/ येनाविष्टितः प्रविवेशिथापः।'[7]; 'तस्योत जायमानस्य-उल्ब आसीद् हिरण्यः।'[8]

वेदों में वायुमण्डल की शुद्धि के लिए द्यावापृथिवी के संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है। वेदों में द्यावापृथिवी की उपयोगिता, महत्त्व, उनके संरक्षण की आवश्यकता और उनको प्रदूषण मुक्त रखने के लिए कतिपय उपयोगी विचार प्रस्तुत किए गए हैं। द्यावापृथिवी में सूर्य, अन्तरिक्ष, पृथ्वी तीनों का समावेश है। द्यावापृथिवी परस्पर संबद्ध है। इनमें पोष्य-पोषक संबंध है। सूर्य ऊर्जा का स्रोत है, अन्तरिक्ष वृष्टि का कारक है और पृथ्वी ऊर्जा और वृष्टि आदि का उपयोग कर अन्नादि की समृद्धि से मानवजीवन को संचालित करती है।

वेदों के अनेक मंत्रों में द्युलोक को पिता और पृथ्वी को माता कहा गया है। अथर्ववेद का कथन है कि पृथ्वी हमारी माता है और हम उसके पुत्र हैं।[9] अथर्ववेद में वर्णन है कि पृथ्वी माता है, अन्तरिक्ष भाई है और द्युलोक पिता है।[10] जिस प्रकार माता-पिता की सेवा करना, उनको कष्ट से बचाना और उनकी रक्षा करना पुत्र का कर्त्तव्य है, उसी प्रकार प्रकृति की रक्षा करना, उसको प्रदूषण से बचाना और उसके उपहारों की सदुपयोग करना हमारा कर्त्तव्य है। यजुर्वेद के एक मन्त्र में वर्णन है कि द्युलोक और पृथ्वी ऊर्जा प्रदान करते हैं, वनस्पतियां शक्ति प्रदान करती हैं और जल ओज (बल, वीर्य) प्रदान करता है। ''दिवः पृथिव्याः पर्योज उद्भृतम्,/ वनस्पतिभ्यः पर्याभृतं सहः,/ अपाम् ओज्मानम्।''[11]

अतः वेदों में अनेक स्थानों पर द्यु-भू को प्रदूषण मुक्त रखने का निर्देश दिया गया है। ऋग्वेद के एक मंत्र में चेतावनी दी गई है कि द्यु-भू चेतन तत्व है, ये हमारे रक्षक है। यदि इनको प्रदूषित किया जाता है तो विनाश, विपत्ति और संकट उपस्थित होंगे। ''द्यौश्च नः पृथिवी च प्रचेतसः .....रक्षताम्। मा दुर्विदत्रा निर्ऋतिर्न ईशत।''[12]

एक मंत्र में बहुत अच्छी बात कही गई है कि द्यु-भू के साथ हमारा बराबरी का संबंध है। यदि हम द्यु-भू की रक्षा करेंगे तो वे भी हमारी रक्षा करेंगे।[13]

यजुर्वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि राज्याभिषेक के समय राजा पृथ्वी को संबोधित करते हुए कहता है कि हे पृथ्वी माता, तुम हमें हानि न पहुंचाना और न हम तुम्हें हानि पहुचाएंगे। 'पृथिवी मातर्मा मा हिंसीः, मो अहम त्वाम्।'[14]

वेदों में जल की उपयोगिता और महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। जल जीवन है, अमृत है, भेषज है, रोगनाशक है, आयुवर्धक है। जल को दूषित करना पाप है। जल में औषधियों के तत्व विद्यमान हैं। जल में सोम आदि का रस मिलाकर सेवन करने से मनुष्य दीर्घायु होता है। 'आपः पृणीत भेषजम्।'[15]; 'आपो .....रसेन समगस्महि।'[16]

एक मंत्र में हिमालय से निकलने वाली नदियों के जल को विशेष लाभकारी बताया गया है। इनका हृदय के रोगों में भी प्रयोग करना चाहिए। 'आपो .....हृदधोत भेषजम्।'[17]

अतः हमारा कर्त्तव्य है कि हम जल को प्रदूषित न करें। यजुर्वेद में जल को प्रदूषण मुक्त करने के लिए अनेक मंत्र आए हैं। इनमें कहा गया है कि जल को शुद्ध रखो, पौष्टिक गुणों से युक्त करो और इनमें औषधि डालकर सुरक्षित रखो। 'अपः पिन्व, ओषधीर्जिन्व।'[18]

ऋग्वेद के एक मंत्र में कहा गया है कि नदी जल को प्रदूषण मुक्त रखने का उपाय है- यज्ञ। यज्ञ की सुगन्धित वायु जल के प्रदूषण को नष्ट करती है। 'अपो देवीः .....सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः।'[19]

वेदों में वृक्ष-वनस्पति के महत्त्व और संरक्षण का भी विस्तृत वर्णन है। अथर्ववेद में कहा गया है कि वृक्ष-वनस्पतियों में सभी देवों की शक्तियां विद्यमान है। ये मनुष्य को जीवन शक्ति देती है और उसकी रक्षक है। अतः इन्हें 'वैश्रवदेव' कहा गया है। 'वीरूधेवैश्रवदेवीः उग्राः पुरुषजीवनीः।'[20]

एक अन्य मन्त्र में कहा गया है कि औषधियां प्रदूषण को नष्ट करती है। इसलिए इन्हें 'विषदूषणी' कहा गया है। 'उग्रा या विषदूषणीः .....ओषधीः।'[21]

ऐतरेय ब्राह्मण और कौषीतिकी ब्राह्मण में वृक्ष-वनस्पतियों को प्राण कहा गया है क्योंकि ये मानवमात्र को प्राणवायु देते हैं। 'प्राणो वै वनस्पतिः।'[22]

शतपथ ब्राह्मण में वृक्ष-वनस्पति को पशुपति अर्थात् शिव का रूप कहा गया है। भगवान शिव का शिवत्व यही है कि वे विष ($CO_2$) रूपी विष पीते हैं और अमृतरूपी ($O_2$) छोड़ते हैं। 'औषधयो वै पशुपतिः।'[23]

वेदों में कुछ वृक्षों का वर्णन है जो प्रदूषण रोकते हैं- अश्वत्थ (पीपल), कुष्ठ (कूठ), भद्र (देवदार), गुग्गुल (गुगल) आदि। अश्वत्थ का बहुत गुणगान करते हुए कहा गया है कि इसमें देवों का निवास है। यह $CO_2$ अधिक मात्रा में खींचता है और $O_2$ छोड़ता है। अतः इसकी देवता के तुल्य पूजा की जाती है। 'अश्वत्थो देवसदनः।'[24]

वेदों में प्रदूषण नाशक तत्वों के रूप में यज्ञ, अग्नि, पर्वत इत्यादि की भी विस्तृत चर्चा है। यज्ञ को प्रदूषण नाशक तत्वों में सर्वोत्तम बताया गया है। चारों वेदों में यज्ञ के महत्त्व का अत्यधिक वर्णन है। यज्ञ के विषय में कहा गया है कि यह सभी अशुद्धियों, दोषों, प्रदूषण को दूर करके पवित्र बनाता है, अतः इसको यज्ञ कहा जाता है। ''एष ह वै यज्ञो योऽयं पवते,/ इदं सर्वं पुनाति, तस्मादेष एव यज्ञः।''[25]

वेदों में पर्यावरण शुद्धि के लिए अग्नि का विस्तार से उल्लेख है। जहां कहीं भी अशुद्धि है, प्रदूषण है, कीटाणु है वह सबको नष्ट करती है। अग्नि को विश्वशुच् अर्थात् संसार को पवित्र करने वाला कहा गया है। अग्नि को पावक, रक्षोनाशक, वृत्रहा, असुरहन्ता आदि उपाधियों से विभूषित किया गया है। 'प्राग्नये विश्वशुचे .....असुरघ्ने।'(ऋग्वेद); 'अग्नि रक्षांसि सेधाति।'(अथर्ववेद)

वेदों में सूर्य एवं पर्वत का भी प्रदूषण नाशक तत्व के रूप में वर्णन है। यजुर्वेद का कथन है कि सूर्य अपनी पवित्र किरणों से वायुमंडल के प्रदूषण को नष्ट करता है। 'सविता पुनातु-अछिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः।'(यजुर्वेद)

पर्वत शुद्ध वायु प्रदान कर नीरोगता का आधार बनते हैं। पर्वत खनिजों, नदियों, वनस्पतियों के भी स्रोत है। ऋग्वेद के एक मंत्र में शुद्ध वातावरण और स्वास्थ्य लाभ के लिए बाल बच्चों सहित पर्वतों पर जाने का वर्णन है। 'तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवः।' (ऋग्वेद)

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[1]अथर्ववेद 18/1/17
[2]अथर्ववेद 4/25/1 से 7
[3]अथर्ववेद 4/25/3
[4]अथर्ववेद 4/13/3
[5]ऋग्वेद 10/186/3
[6]ऋग्वेद 6/37/3
[7]ऋग्वेद 10/51/1
[8]अथर्ववेद 4/2/8
[9]अथर्ववेद 12/1/12
[10]अथर्ववेद 6/120/2

[11]यजुर्वेद 21/53
[12]ऋग्वेद 10/36/2
[13]यजुर्वेद 2/9
[14]यजुर्वेद 10/23
[15]ऋग्वेद 1/23/21
[16]ऋग्वेद 1/23/23
[17]अथर्ववेद 6/24/1
[18]यजुर्वेद 14/8
[19]ऋग्वेद 1/23/18
[20]अथर्ववेद 8/7/4
[21]अथर्ववेद 8/7/10
[22]ऐतरेय ब्राह्मण 2/4
[23]शतपथ ब्राह्मण 6/1/3/12
[24]अथर्ववेद 5/4/3
[25]छान्दोग्य उपनिषद 4/16/1

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,17-20
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 30 अक्टूबर 2014

# अद्भुत कला प्रतिभा के धनी जगदीश स्वामीनाथन का समीक्षात्मक अध्ययन

सन्तोष कुमार* एवं डॉ. प्रसन्न पाटकर**

*लेखक का घोषणा-पत्र*

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *अद्भुत कला प्रतिभा के धनी जगदीश स्वामीनाथन का समीक्षात्मक अध्ययन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखक *सन्तोष कुमार एवं प्रसन्न पाटकर* घोषणा करते हैं कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेते हैं, क्योंकि हमने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देते हैं। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह हमारी मौलिक कृति है। हम शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देते हैं। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देते हैं।

*विषय वस्तु*

कला असीमित अनन्य अविरल निर्वधी है, पृथ्वी विपुला है एवं सौन्दर्य संवेग कला की साधना है, सौदर्य कला का प्रथम आयाम है, कला सौदर्य समान रूप से अतुलनीय तथा असाधारण है, आज का युग इन्हें अलौकिक नहीं मानता, परन्तु आश्चर्य के साथ खुली आंखों से अचरज भर के उसे देखता है तथा महसूस करना चाहता हैं, यही असमानता सौन्दर्य है और इसका साधारणीकरण कला है। आधुनिक कला ने परम्परागत मान्यताओं जिसमें रूप भेद प्रमाण भाव लावण्य योजना ही प्रमुख है, इसको झुठलाते हुए सौन्दर्य के प्रतिमानों को बदलते हुए अपनी नवीन व्यवस्थाओं को प्राप्त किया है तथा इसमें कला के क्षेत्र की हम जिस अभिब्यक्ति की चेष्टा करते हैं, उसमें अन्तर होते हुए कोई न कोई समानता एवं सादृश्यकरण अवश्य है। ऐसी कोई चीज है, जो हमें कला से जोड़े हुए है। मानव जीवन के किसी भी क्षेत्र में मापदण्ड स्थापित करना और आयाम का निर्धारण करना उतना कठिन नहीं है, जितना कि कला के क्षेत्र में, इस लिए कला दर्शन की जमीन पर वादो के बृक्ष बहुत जल्द पनपते हैं व इन सब को साधारण जन सामान्य कला प्रेमी वर्ग के लिए अपना भाग ढूढ़ निकालना दुष्कर एवं कठिन हो जाता है। कला में समय काल तथा देश के अन्तर होने पर कला के सौन्दर्य विषय विचार तथा अभिव्यंजना में भी अन्तर हो जाता है। ललित कला के क्षेत्र में फिर भी उन कलाओं में जो सौन्दर्य आकर्षण होता है, वे एक प्रतिमान स्थापित करते हैं। तथा ललित कला वे क्षेत्र में हम जिस अभिब्यक्ति की चेष्टा करते हैं। उसमें अन्तर होते हुए भी कोई सादृश्य तथा साम्य अवश्य होता है।

* शोध छात्र, ललित काला विभाग, म. गा. चि. ग्रा. वि. वि. [चित्रकूट] सतना (मध्य प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल) E-mail : skeshari82@gmail.com
** असोसिएट प्रोफेसर, एम. जी. सी. जी. वी. चित्रकूट सतना (मध्य प्रदेश) भारत। E-mail : drppatkar@gmail.com



© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

*परिचय*

जगदीश स्वामीनाथन, भारतीय आधुनिक चित्रकारों में प्रमुख स्थान रखने वाले बहुमुखी प्रतिभा के धनी ब्यक्ति थे। इनमें चित्र कला के साथ लेखन, राजनीतिक, कुशल वक्ता, संम्पादक आदि गुणो का समावेश था। जगदीश स्वामीनाथन का जन्म शिमला में 21 जून, 1928 को एक तमिल परिवार मे हुआ, इनके पिता श्री एन0 वी0 जगदीश अइयर सरकारी कर्मचारी थे, इनका परिवार दिल्ली में रहता था। जगदीश स्वामीनाथन ने मैट्रिक पास करने के बाद हिंदू कालेज दिल्ली में मेडिकल की पढ़ाई शुरू की। लेकिन पढ़ाई में मन न लगने के कारण अचानक कलकत्ता चले गये। यहीं से घुमंतू और संघर्षशील जीवन की शुरूआत की। करीब डेढ़ वर्ष तक कलकत्ता में रहने के बाद जगदीश स्वामीनाथन वापस दिल्ली आ गये।

राजनैतिक जीवन की शुरूआत में पहले कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी से जुड़े, फिर सी0 पी0 आई0 से जुड़े। राजनीति से मोहभंग होने के बाद आप पत्रकारिता करने लगे, आप ने दैनिक हिंदुस्तान तथा बाल पत्रिका सरिता में काम किया तथा लिंक के कला समीक्षक रहे। पत्रकारिता के साथ ही आपने दिल्ली पालिटेक्नीक में सन्ध्या कालीन कक्षा में कला अध्ययन किया। स्कालरशिप के तहत एकेडमी ऑफ फाइन आर्ट्स वारसा पोलैन्ड गये। 1968-70 स्वामीनाथन को Relavance of The tradition numen in Contemporary Art (1968) पर प्रथम नेहरू फेलोशिप प्राप्त हुई। 1965 के टोक्यो विनाले तथा प्रथम भारतीय त्रिनाले के सामूहिक प्रदर्शनी में भी भाग लिया तथा 1969 में स्वामीनाथन *साओ पाओलो ब्राजील* की द्विवार्षिक प्रदर्शनी में अर्न्तराष्ट्रीय ज्यूरी के सदस्य बनाये गये एवं अपनी सेवाएं *बोर्ड आफ द इण्डियन काउंसिल फार कल्चरल रिलेशन* को भी दी। 1970 में आपने स्वामी नाथ ललितकला अकादमी के गठन और कार्यो का विरोध करना प्रारम्भ किया तथा आर्टिस्ट प्रोटेस्ट मूवमेन्ट के सचिव बने और ये भारतीय कला की गति विधियों में महत्वपूर्ण माने जाने लगे; 1981 में *इंदिरा गांधी नेशनल कला सेन्टर* के ट्रस्टी रहे। जगदीश स्वामीनाथन को रूपंकर भारत भवन भोपाल का प्रथम निर्देशक नियुक्त किया गया जिसका उद्घाटन 13 फरवरी 1982 को हुआ रूपंकर में इनके नवीन विचारों से कई विभिन्न कला परिवर्तनों को बहुत सराहना हुई, इन्दिरा गांधी ने कहा की कला तथा संस्कृति का केंद्र दिल्ली से भोपाल चला गया।

जगदीश स्वामीनाथन ने कुल 31 एकल प्रदर्शनी तथा कई सामूहिक प्रदर्शनियों में देश तथा विदेशों में भाग लिया था। इनका विवाह भवानी से हुआ था तथा जिनसे स्वामीनाथन को दो पुत्र, कालीदास तथा हर्ष हुए। इनकी मृत्यु 24 अप्रैल 1994 को 65 वर्ष की आयु में हृदय गति रूक जाने से हुई।

*कला का विकास क्रम*

आप ने अपनी कला के आदिम चिन्हों, तान्त्रिक चिन्हों भारतीय लघु चित्रण के साथ आदिवासी चित्रण को विश्व कला पटल पर लाने का अथक प्रयास किया आपके प्रयासों से ही आदिवासी चित्रण को कला जगत में मान्यता प्राप्त हुई। आपके व्यक्तिगत बैचारिक गुणों और नवीन शैलियों जिसमें स्पेस की ज्यामतीय वर्ड एवं सिम्बल सीरीज जर्नी सीरीज वर्ड एवं माउन्टेन सीरीज चित्रण के पीछे का दर्शन आज भी अचंभित करने वाला हैं।

आपके चित्र जो हमें अतीन्द्रिय लोक स्वप्न लोक में ले जाने वाली शक्ति रखती है, उसके अन्दर का दर्शन तथा आदिवासी संस्कृत के चित्रों के साथ ही आप के द्वारा लिखी पुस्तकें कला साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। आपके चित्रों में प्रकृति का चित्रण एवं चिड़ियों जो गुरूत्वार्षण से मुक्त सी प्रतीत होती है, जो स्थिर के साथ उडती सी प्रतीत होती यह हमे एक जादुई दुनिया की सैर कराने वाली लगती हैं।

जगदीश स्वामीनाथन की कला का प्रथम चरण सन् 1960 के करीब आरम्भ हुआ। जब ये प्रागैतिहासिक चिन्हों बिम्बयोजना आदिम चिन्हों टोटम चिन्हों का प्रयोग करने लगे। बाद में इन्होंने भारतीय लोक कला तथा आदिवासी संस्कृति के प्रतीकों तथा चिन्हों को अपनाना प्रारम्भ किया। आरम्भिक चित्रों में पैलेट नाइफ का इस्तेमाल किया, इसके पश्चात स्वामीनाथन काल्पनिक ज्यामितीय चित्रण करने लगे, इन चित्रों को स्पेस की ज्यामिती (Calor space of Geometry) कहा गया । इनके चित्र कला रूपात्मक रही है जिनकी प्रायः पुनरावृत्ति हुई है लेकिन इन चित्रों की पुनरावृत्ति दर्शकों को अखरती नही है। चित्रण तकनीक

जलरंग के समान है पृष्ट भूमि सपाट तथा द्विआमी है स्वामीनाथन के अनुसार, *''मैने रंग तथा खाली स्थान के मध्य में सम्बन्ध स्थापित किया है।''*

चित्रों में पीले चमकीले लाल कत्थई हल्दिया, हल्का हरा बैगनी भूरा आदि का अधिक प्रयोग हुआ है शायद इनसे पहले किसी ने इस प्रकार से पीले तथा चमकीले सादे रंगो का इतना बढिया प्रयोग किया है।

स्वामीनाथन नें प्रकृति से प्रतीकों का चयन करके आड़े तिरक्षे कोमल पारदर्शी तथा विशाल आकार के पर्वतों का चित्रण किया जिन्हें गुरूत्वाकर्षण से मुक्त हो कर आकाश में बड़े सहज भाव से विचरण करते दिखाया गया है। कभी इन पर कोई पक्षी अंकित है तथा पर्वत के नीचे या पहाड़ी के शिखर पर एक पुष्पित झाड़ी अथवा कोई पौधा रहता है आकाश में कोई वृक्ष आदि-आकाश में पक्षी उड़ती हुई सी तथा स्थिर सी प्रतीत होती है। स्वामीनाथन के चित्र हमें सम्पूर्ण अतीन्द्रिय लोक में ले जाती है, स्वामीनाथन की कृतियां इनकी पहचान थी। आपके चित्रों में आदिम टोटम आदि के चिन्हों के प्रयोग, अन्तरिक्ष की ज्यामिती के पीछे का दर्शन तथा आप का दर्शन, विचारों का तीव्रता से प्रस्तुतिकरण महत्वपूर्ण है तथा आप ने रूपंकर भारत भवन भोपाल में निदेशक के तौर में बिताये गये समय में लघु चित्रों का एवं आदिवासी संस्कृति चित्रण को प्रोत्साहित करने हेतु मध्य प्रदेश के जंगलों में खोज किया। वह व्यक्ति जिसका जन्म महानगर में हुआ हमेशा महानगर मे रहने का मौका मिला वह व्यक्ति आदिवासी चित्रण को विश्व कला परिदृश्य स्थान दिलाने के लिये जंगलों में रहा, आखिरकार जगदीश स्वामीनाथन के प्रयासों के फलस्वरूप आज आदिवासी चित्रकला को उचित स्थान प्राप्त हुआ साथ ही आपके चित्रों में उनके कलात्मक तत्व को खोजा, जिनसे उनकी मौलिकता एवं उत्कृष्टता को समझा जा सके।

### *जगदीश स्वामीनाथन के बारे में कुछ लोगों के व्यक्तव्य*

स्वामी के रंगो में बहुत कुछ ऐसा होता हैं, जो दूसरों के रंगो से गायब रहता है, जो बाजार में नहीं मिलता, जो स्वामी ने अपनी प्रयोगशाला में खुद तैयार किये हैं, जो सुन्दर जिनमें खुरदुरापन है, वैसा ही जैसा स्वामी के कुर्तों में होता है। स्वामी के रंगो में आलोक तो बहुत है, पर चमक दमक नहीं। (कृष्ण बलदेव वैद)

स्वामी के जूनून अक्सर चकरा देने वाले किन्तु अन्ततः संक्रामक होते थे, उनकी बातचीत अक्सर आत्मचिंतन्तात्मक एकालापि और अप्रत्याशित किन्तु हमेशा आकर्षक होती थी, उसके विचार हमेशा स्थिर और आवेगपूर्ण होते थे उसके मौन महासागरीय, उसकी कल्पना बौद्धिक, उसकी वाक्पटुता तलवार सी तेज, उसका मजाक निहत्था कर देने वाली शालीनता से परिपूर्ण। स्वामी में एक आवारा हीरो (पिकासो) के कुछ गुण मौजूद थे और डॉन के होते के भी। (कृष्ण बलदेव वैद)

"कला निश्चित ही कला के लिए है किन्तु यह मनुष्य को उस अंजान की तरफ से आश्चर्यजनक वस्तु की तरह उपहार के रूप में सम्बोधित है।" (स्वामीनाथन)

मै वहाँ खड़ा हूँ जहॉ पहला आदमी अकेला खड़ा था। अपने समय की विभीषिकाओं का सामना करता हुआ। (कान्ट्रा के पहले अंक से) *जगदीश स्वामीनाथन*

चित्रकला में शब्द को वापस लाने का सवाल है पर ऐतिहासिक शब्द नहीं जो सादृश्य है, मृत्यु है बल्कि शब्द जो समय के साथ नहीं जन्मता, शब्द ब्रह्माण्ड के रूप में शब्द जो हर आविर्भाव में गूंजता है और हर आविर्भाव में शब्द है, शब्द जो घटनाओं को सामान्य सन्दर्भ से निकाल कर और सच्चाई के सांचे में रखकर तत्काल व्यष्टि परकता देता है यह शब्द है जिसे सुनना ही होगा जिसे अपने अन्दर हमेशा बक बक करने वाले अहं के चंगुल से छुडाना है, उसे चित्रकला में लौटना है मनुष्य सार्वभौम होकर व्यक्ति है न कि विशिष्ट होकर। (स्वामीनाथन)

I Paint Because I Cannot Keep Away From It Takes Me Away From Myself. Not Knowing What To Paint I Start My Daily Journey In Innocence And All The Teachings Of The Masters Are Of No Use To Me For They Are Mere Crutches To One Unaware Of His Own Feet. - *J Swaminathan* (Contra 1966)

### *लिखित पुस्तकें*

स्वामीनाथन के बहुमुखी प्रतिभा कृतित्व आदि की कड़ी में लेखन भी महत्वपूर्ण विधा रही है, अपनी लिखित पुस्तकों में इन्होंने सामान्य जन समस्याओं को उजागर किया है तथा महत्वपूर्ण आदिवासी संस्कृति को आगे लाने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। स्वामीनाथन की लिखित पुस्तक है :

1- The Magical Script ; Drawing By The Hill Karvas Of Jaspur Raigarh M.P.1983; Bharat Bhawan Publicantion.
2- The Perceivinge Fingers; Catlogue Of Roopankar Collection Of Folk And Adivasi Art From M.P. – 4 Book. 3- 1987 , 1-1978
3.- Form, Language, Time, Some Stray Thoughts, (Un-Publised) By Akhilesh ji
4 – Pre- Naturalistic Art & Post – Naturalistic Vision ' An Approach To The Appreciation Of Tribal Art (Un-Publised) By Akhilesh ji

### *स्वामीनाथन द्वारा लिखी सात कविताएँ*

जगदीश स्वामीनाथन के प्रतिभा का प्रमाण उनके द्वारा लिखी सात कविताएं जो अद्वितीय हैं। ये कविताएं पूर्वग्रह के मार्च अप्रैल 1979 के अंक में छपी हैं। कविताओं का शीर्षक है- पुराना रिश्ता, दूसरा पहाड़, जलता दयार, सेव और सुग्गा, कौन मरा, गांव का झल्ला, मनचला पेड़।

जगदीश स्वामीनाथन की सभी कविताओं पर समकालीन कलाकार अखिलेश जी ने एक लेख लिखा है जो जानकीपुल जे स्वामीनाथन की कविताओं पर समकालीन चित्रकार अखिलेश का लेख शीर्षक से www.jankipul.com/2014/04/blog-post_8.html पर उपलब्ध है।

### *उपसंहार*

स्वामी पहले भारतीय चित्रकार थे जिन्होंने आदिवासी और लोककला को बराबरी का दर्जा दिलाया, इस दिशा में पिछला दशक स्वामी जी की सृजनात्मक गतिविधि का चरम उत्कर्ष कहा जा सकता है। जब उन्होंने म0 आ0 की आदिवासी और लोककला का प्रत्यक्ष साक्षात्कार किया था। इसके पूर्व स्वामी जी के मन मस्तिष्क में आदिवासी और लोक कला परम्परा की जो भी धारणा रही हो, वह सैद्धान्तिक रही होगी। लेकिन जब म0 आ0 में उन्होंने उसका प्रत्यक्ष दर्शन किया, तब कितने ही रूपाकारों को देखकर चकित हुए होंगे और न जाने कितने मिथक को यथार्थ रूप मे देखकर आश्चर्य में पड़े होंगे। कितने ही आदिम विश्वासों कितनी ही सच्ची मान्यताओं और जीवन के रहस्यात्मक पहलुओं को देखकर रोमांचित रह गये होंगे। यह उस सत्य के आकाश की प्राप्ति की तरह हुआ होगा जो कभी बोधिवृक्ष के नीचे बुद्ध को हुआ था। उन्होंने महसूस किया होगा कि आदिम संसार को नजदीक से देखना समझना एक सर्वथा अलग अनुभव से गुजरना है। जहॉ जीवन को जीने का अलग ही अन्दाज है। जहॉ न केवल वैचारिकता का घटाटोप टकराव नहीं होता है, बल्कि सहजता का जरा सा भी गोप्य भाव तक नहीं होता ऐसे संसार में विचरण करना सर्वथा भिन्न और अलौकिक तो है ही, किन्ही अर्थो में मनुष्य को पाना भी है। इसका असर स्वामी के बाद के सृजन में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

जगदीश स्वामीनाथन चित्रकला में श्रेष्ठ तो थे ही साथ में साहित्य संगीत लेखन आदि विधा में भी पूर्ण अधिकार रखते थे। जगदीश स्वामीनाथन एक कुशल वक्ता राजनेता पत्रकार सामाजिक व्यक्तित्व के धनी महान निर्मल हृदय के व्यक्ति थे।

### संन्दर्भ ग्रन्थ

कृष्ण खन्ना -*जगदीश स्वामीनाथन,* ललित कला अकादमी
आर0 के0 अग्रवाल -*1979 भारतीय चित्रकला के विकास*
डा0 आर0 ए0 अग्रवाल -*भारतीय चित्र कला का विवेचन चित्र कला का विकास*
प्राण नाथ मॉगो -*2001 कन्टेम्परारी आर्ट इन इण्डिया,* नई दिल्ली
डा0 रीता प्रताप वैश्य -*भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास*

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,29-31
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 12 नवम्बर 2014

# शंकराचार्य : स्तोत्र के परिप्रेक्ष्य में

आशीष कुमार*

*लेखक का घोषणा-पत्र*

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *शंकराचार्य : स्तोत्र के परिप्रेक्ष्य में* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *आशीष कुमार* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

*शंकराचार्य* दार्शनिक जगत् में अद्वैत वेदान्त के सर्वोत्तम प्रतिष्ठापक शंकराचार्य का समय अष्टम शतक का उत्तरार्ध माना गया है। शंकराचार्य भारत की दुर्लभ विभूतियों में अग्रगण्य हैं। ये भगवान् की एक दिव्य विभूति थे, जिनकी कीर्तिकौमुदी आज भी समस्त जगत् को प्रद्योतित कर रही है। शंकराचार्य जी ने ब्रह्म सूत्रों, गीतों तथा उपनिषदों पर विद्वत्तापूर्ण भाष्य लिखे हैं। अद्वैत वेदान्त के वे मूर्धाभिषिक्त भाष्यकार एवं अद्वैत प्रचारक थे। दार्शनिक जगत् में उन्होंने अद्वैत तत्त्व की प्रतिष्ठा की, परमार्थ दृष्टि से वे अद्वैत तथा मायावाद के परम प्रतिष्ठापक हैं। परन्तु व्यवहार जगत् में नाना देवताओं की उपासना की है। शंकराचार्य सत्य के पारमार्थिक एवं व्यावहारिक दोनों पक्षों को लेकर चलने वाले दार्शनिक थे अतएव लोकप्रचलित विश्वासों को स्वीकार करते हुए जनसाधारण की भावनाओं की तुष्टि के लिए उन्होंने कई स्तोत्रों को लिखा था। उनके स्तोत्रों में ललित पदावली, सरस शैली, गहन भक्ति तथा तीव्र वैराग्य भावना के दर्शन होते हैं।

शंकराचार्य के नाम से अनेक स्तोत्र काव्य उपलब्ध होते हैं। सगुण ब्रह्म की उपासना निर्गुण ब्रह्म तक पहुँचाने के आवश्यक साधन हैं। इसीलिए शंकराचार्य जी ने उपास्य ब्रह्म के प्रतिनिधिभूत विष्णु, शिव, गणपति, हनुमान् आदि नाना देवी-देवताओं की परम रमणीय स्तुतियाँ लिखी हैं। इन स्तोत्रों की संख्या बहुत अधिक है। इन सबको शंकराचार्य की रचना मानना उचित नहीं है, परन्तु इनमें से अनेक प्रसिद्ध स्तोत्र आचार्य की ललित लेखनी के प्रसाद हैं।

शंकराचार्य जी की काव्यकला बड़े ही ऊँचे दर्जे की है। उसे हम अन्तः प्रेरणा का, प्रशस्त प्रतिभा का फल समझते हैं। शंकराचार्य जी के स्तोत्रों में रसभाव-निरन्तर है, आनन्द का अक्षय स्रोत है। उनके स्तोत्रों में उज्ज्वल अर्थरत्नों की मनोरम पेटिका है और कमनीय कल्पना की ऊँची उड़ान है। उनके स्तोत्र हमारे स्तोत्र-साहित्य के श्रृंगार हैं। उनमें संगीत की इतनी माधुरी है कि श्रोताओं का हृदय उनकी ओर हठात् आकृष्ट हो जाता है।

* शोध छात्र, संगीत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय (चण्डीगढ़) भारत



© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

शंकराचार्य जी के स्तोत्र में हृदय की दीनता, भक्त की सर्वस्व समर्पणता तथा भक्ति का अबाध प्रवाह दृष्टिगोचर होता है। देवी भगवती के प्रति शंकराचार्य जी ने अपनी भक्ति तथा आत्मसमर्पण का यह उदाहरण दिया, ''पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः/ परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः। मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिंद नो तव शिवे/ कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति।। (देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम् -3)

संसार की नश्वरता, आसक्ति एवं मोह की निःसारता तथा पुनर्जन्म के चक्र की कष्टमयता को शंकराचार्य जी ने अत्यन्त ही भावप्रवणता के साथ अनुभव किया था। उनकी यह अनुभूति संगीत की माधुरी से संवलित होकर चर्पटपञ्जरिका स्तोत्र में दिखती हैं, ''भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढमते। समप्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति डुकृञ् करणे।। पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम्। इह संसारे खलुदुस्तारे कृपया पारे पाहि मुरारे।। (चर्पटपञ्जरिकास्तोम्)

इस स्तोत्र की स्वरलहरी जब हमारे कर्णकुहरों में अमृतरस बरसाने लगती है तब जान पड़ता है कि हम इस क्लेश बहुल जगत् से ऊँचे उठकर किसी आनंदमय दिव्यलोक में जा विराजे हैं। शंकराचार्य जी का काव्यकौशल भी नितान्त उच्चकोटि का था। उनकी काव्य के सौन्दर्य दर्शन के लिए एक "सौन्दर्यलहरी" स्तोत्र ही पर्याप्त है।

आचार्य शंकर त्रिपुरासुन्दरी के महनीय उपासक थे और इसीलिए श्रृंगेरी मठ में भगवती की उपासना परम्परा आज भी प्रचलित है। आचार्य ने "त्रिपुरसुन्दरी- मानसिकोपचार" तथा "चतुष्षष्टि उपचारमानसपूजा" में भगवती की मानसपूजा का वर्णन बड़े ही अच्छे ढंग से किया है। इनमें से प्रथम स्तोत्र 128 पद्यों से समन्वित है तथा दूसरा 73 पद्यों से युक्त है। मानसपूजा का बड़े ही सरस पदों में वर्णन किया है। आचार्य शंकर का सर्वोत्तम शाक्तस्तव "सौन्दर्यलहरी" ही है। भगवती के दिव्य सौन्दर्य की छटा इस लहरी में जितनी प्रस्फुटित हुई है, उतनी शायद ही अन्यत्र हो। इस स्तोत्र की भाषा तथा भाव, रस तथा अलंकार, साहित्य तथा तन्त्र-किसी भी दृष्टि से अनुशीलन किया जाय, इसकी अलौकिकता पदे-पदे प्रमाणित होती है। इसमें शिखरिणी छन्द का प्रयोग किया गया है। सौन्दर्यलहरी स्तोत्र के आरम्भिक चालीस पद्यों में हम तन्त्रशास्त्र के गम्भीर रहस्य का परिचय पाते हैं। साहित्य-सौन्दर्य तथा तान्त्रिक रहस्य-दोनों की उद्घाटना के लिए यह स्तोत्र अनुपम है।

शंकराचार्य का "कनकधारास्तव" भगवती लक्ष्मी की स्तुति में विरचित नितान्त मनोरंजक तथा महत्त्वपूर्ण है। श्लोकों की संख्या 22 है। लक्ष्मी के केवल कटाक्ष का ही इसमें आलंकारिक वर्णन है। लक्ष्मी के नेत्र के ऊपर मेघ का यह रूपक कितना सटीक तथा सुसंगत है, ''दद्याद्दयानुपवनों द्रविणाम्बुधारास्मिन्न अकिच्चनविहंग शिशै विषण्णे। दुष्कर्म-धर्ममपनीय चिराय दूरं नारायण-प्रणयिनीनयनाम्बुवाह-।।''

शंकराचार्य की एक विशिष्ट शाक्त रचना है अम्बाष्टक, जिसमें अम्बा की प्रशस्त स्तुति एक वृत्त में की गई है। यह स्तोत्र रसिकों में विशेष प्रख्यात है।

शंकराचार्य के नाम से अनेक स्तोत्र काव्य उपलब्ध होते हैं, पर यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता कि कितने और कौन से स्तोत्र आदि गुरु शंकराचार्य ने स्वयं लिखे थे और कितने उनके द्वारा स्थापित शंकर मठाधीशों ने लिखे थे। इनके नाम से प्रसिद्ध स्तोत्र निम्न हैं- 1. विष्णु पादादि केशान्त वर्णन स्तोत्र- इसके 51 पद्यों में भगवान् विष्णु की स्तुति की है। 2. अम्बाष्टकम्- इसमें पार्वती जी की कवित्वपूर्ण मार्मिक स्तुति है। 3. देव्यपराधक्षमापन् स्तोत्र- यह स्तोत्र दुर्गाजी की स्तुति में लिखा गया है। 4. श्रीगुर्वष्टकम्- यह स्तोत्र गुरु की स्तुति में लिखा गया है। यह अष्टक एक स्तोत्र है। 5. गणेशपंचरत्नस्तोत्रम्- यह एक पंचक स्तोत्र है जिसमें गणेश की स्तुति की गई है। 6. श्रीशिवनामावल्यष्टकम् : यह भगवान् शिव की स्तुति में लिखा गया एक अष्टक स्तोत्र है। 7. वेदसारशिवस्तोत्रम्- इस स्तोत्र में 11 पद्य हैं जो कि भगवान् शिव की स्तुति में वर्णित हैं। 8. श्रीशिवापराधक्षमापनस्तोत्रम्- इस स्तोत्र में शंकराचार्य जी द्वारा स्तोत्र के माध्यम से क्षमा याचना की गई है। इस स्तोत्र में 17 पद्य हैं। 9. शिवमंगलाष्टकम्- यह भगवान् शिव की स्तुति में लिखा गया एक अष्टकपदी स्तोत्र है। 10. द्वादशज्योतिर्लिंग स्तोत्रम्- इस स्तोत्र में शंकराचार्य जी द्वारा भारत में प्रतिष्ठित 12 ज्योतिर्लिंग का वर्णन किया गया है यह सभी ज्योतिर्लिंग कहाँ-2 है इसका वर्णन किया गया है। 11. अर्धनारीश्वरस्तोत्रम्- इस स्तोत्र में भगवान् शिव तथा पार्वती के अर्धनारीश्वर रूप का वर्णन है। इस स्तोत्र में पदों की संख्या 9 है। 12. अच्युताष्टकम्- भगवान् विष्णु की स्तुति में लिखा गया यह अच्युताष्टक स्तोत्र है। यह एक अष्टपदी स्तोत्र है। यह स्तोत्र सम्पूर्ण भारत में बहुत गाया जाता है। अच्युताष्टकम् स्तोत्र का उदाहरण निम्न है- ''अच्युतं केशवं रामनारायणं/ कृष्णदामोदरं वासुदेवं हरिम्। श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं/ जानकीनायकं रामचन्द्रं भजे।''

13. भवान्यष्टकम् - यह एक अष्टपदी स्तोत्र है। इसमें माँ भवानी की स्तुति की गई है। 14. आनन्द लहरी- इस स्तोत्र में 20 पद्य हैं। 15. श्री कृष्णाष्टकम् - शंकराचार्य जी द्वारा रचित यह अष्टपदी स्तोत्र है, जिसमें भगवान् कृष्ण की स्तुति की गई है, कृष्णाष्टकम् शंकराचार्य जी ने दो भागों में लिखा है। 16. निर्वाणाष्ट्कम् - शंकराचार्य विरचित यह षट्पदी स्तोत्र है। 17. साधनपंचकम् - यह पंचपदी स्तोत्र है। 18. कौपीनपंचकम् तथा मनीषापंचकम्- ये दोनों ही पंचपदी स्तोत्र हैं। 19. श्रीगंगास्तोत्रम् - इस स्तोत्र में 14 श्लोकों के माध्यम से गंगा जी की स्तुति की गई है। 20. श्रीयमुनाष्टकम् - इस स्तोत्र में यमुना जी की स्तुति की गई है। यह एक अष्टपदी स्तोत्र है। 21. शिवानन्द लहरी - इसमें भगवान् शंकर की 100 पदों में स्तुति की गई है, इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि इस स्तोत्र के 99 पद्यों को सुनकर भगवान् शंकर स्वयं शंकराचार्य को दर्शन देने के लिए उनके समक्ष प्रकट हुए थे। यद्यपि शिवानन्द लहरी एक स्तोत्र काव्य है। पर कवित्व की दृष्टि से भी एक उत्तम कोटि का गीति काव्य है। इस काव्य में गुण, रस, अलंकार आदि सभी काव्यपेक्षित सामग्री इसमें आद्योपान्त उपलब्ध होती है। कई प्रकार के छन्दों का रसानुगुण प्रयोग है। यह स्तोत्र नित्य पठनीय है।

शंकराचार्य द्वारा रचित दो स्तोत्र जो कि स्रग्धरा छन्द में निबद्ध हैं बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। एक है शिवपादि- केशान्तवर्णनस्तोत्र जिसमें 41पद्य हैं। दूसरा है शिवकेशादिपादान्तवर्णन स्तोत्र जिसमें 29 पद्य हैं।

## संदर्भ सूचि


बलदेव उपाध्याय -संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या 351

डा0 बाबूराम त्रिपाठी -संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ संख्या 127

बलदेव उपाध्याय -संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या 351

प्रीति प्रभा गोयल -संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या 310

आचार्य बलदेव उपाध्याय -संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या 351

प्रीति प्रभा गोयल -संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या 311

*स्तवनाञ्जलिः,* रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग) धन्तोली, नागपुर

प्रीति प्रभा गोयल -संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या 310

आचार्य बलदेव उपाध्याय -संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या 351

*काव्यमाला गुच्छक 9 में प्रकाशित*

आचार्य बलदेव उपाध्याय -संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या 369

आचार्य बलदेव उपाध्याय -संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या 369

*काव्यमाला गुच्छक 2 में प्रकाशित*

डा0 बाबूराम त्रिपाठी -संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ संख्या 127

*स्तवनाञ्जलिः,* (प्रकाशन) रामकृष्ण मठ, नागपुर, पृष्ठ संख्या 113

*स्तोत्र रत्नावली,* गीताप्रेस, गोरखपुर, ऊपर लिखे गये सभी स्तोत्र स्तोत्र रत्नावली से लिए गए हैं।

डा0 बाबूराम त्रिपाठी -संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ संख्या 128

आचार्य बलदेव उपाध्याय -संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या 364

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,32-38
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 23 नवम्बर 2014

# भारतीय संगीत और दर्शन

डॉ. गीता जोशी*

*लेखक का घोषणा-पत्र*

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारतीय संगीत और दर्शन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *गीता जोशी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

भारतीय समाज का पूरा परिवेश यहाँ की विभिन्न धार्मिक परंपराओं और छटाओं से युक्त अनेकानेक धर्म, रीति रिवाज एवं सभ्यता तथा संस्कृतियों के लालित्य से ओत-प्रोत है जिनमें समता, विषमता होते हुए भी एकता है इस कारण पूरे विश्व में अप्रतिम संस्कृति के कारण हम इस संबंध में सिरमौर कहे जा सकते हैं। हमारे देश के ऋषि-मुनि तपस्वी, महात्मा, ज्ञानी, विद्वान, विदुषी सभी हमारी उत्कृष्ट विधाओं का मनन, चिंतन करते रहे हैं और अनेकशः विशिष्ट उपलब्धियों के कारण भारत को ज्ञान का भंडार देने में समर्थ रहे। इसके विपरीत यदि मनुष्य अपने परिवार और भौतिक वस्तुओं के उपयोग के विषय में सोचे तो उसका चिन्तन भौतिक चिन्तन कहलाता है। लेकिन बुद्धि, विवेक, आत्मा, परमात्मा तथा प्राकृतिक वस्तुओं के विषय में सोचना धर्म एवं आध्यात्म से जुड़ा चिन्तन अध्यात्मिक माना।

स्वामी विज्ञानानंद सरस्वती ने दर्शन की व्याख्या करते हुए लिखा है, 'दृश्यते, ज्ञायते सत्यधर्मोऽनेन इति दर्शनम्'; अतः जिससे सत्य धर्म जाना जा सके, वही दर्शन है।

विश्व में जो भी घटित होता है उसी के अनुरुप सत्य एवं धर्म स्थापित होता है। संसार में ईश्वर द्वारा प्रदत्त दो प्रकार के पदार्थ पाये जाते हैं- जड़ और चेतन। जड़ वस्तुओं की क्रिया करने की प्रक्रिया में प्रश्नचिह्न लगा होता है जबकि चेतन प्राणी क्रिया करने योग्य होता है। जड़ वस्तुएं चक्षु से देखी जाती है और अनुभव की जाती है। चेतन में आत्मा होती है। आत्मा, परमात्मा और अध्यात्म से जुड़ा होता है। इस विषय में चिन्तन-मनन करना और अनुभव करना ही अध्यात्म और दर्शन है।

जड़-चेतन, आत्मा परमात्मा के विषय में गहराई से चिन्तन-मनन करने की प्रक्रिया दर्शन कहलाती है। भारतीय संस्कृति में इनकी स्पष्टता देखी जा सकती है। हमारे वेद, धर्म, दर्शन एवं भारतीय कलायें और उनका शास्त्र जड़-चेतन, आत्मा-परमात्मा से ही प्रस्फुटित हैं।

* एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत गायन, महिला महाविद्यालय सतीकुण्ड [कनखल] हरिद्वार (उत्तराखण्ड) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)



© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

आंग्ल भाषा में दर्शन को 'फिलासफी' नाम से अभिहित किया गया है। 'फिलासफी' शब्द की उत्पत्ति 'फिलास' और 'सोफिया' इन दो शब्दों के संयोग से मानी गयी है। फिलासफी शब्द यूनानी भाषा से लिया गया है, जिसका अर्थ ज्ञान के लिये प्रेम है।[1]

दर्शन शब्द की सिद्धि 'दृश' दृशिर प्रेक्षणों धातु से करण में ल्युट प्रत्यय के योग से होती है। इसका भाव एवं अर्थ दोनों एक ही भावना व्यक्त करते हैं। 'दर्शन' या तो इन्द्रिय जन्य निरीक्षण हो सकता है, अथवा प्रत्येक ज्ञान तथा अर्न्तदृष्टि द्वारा अनुभूत हो सकता है। यह मात्र इन्द्रियजन्य ही नहीं है, अपितु ज्ञान दृष्टि या दिव्य दृष्टि से देखना ही दर्शन का अभिध्येय है।[2]

दर्शन के सामान्य अर्थानुसार 'दर्शन व्यक्ति के उन विचारों, विश्वास तथा धारणाओं का पुंज है, जिसके अनुसार वह जीवन में सोचता तथा जीता है।[3]

मनु का कथन है कि- सम्यक् दर्शन प्राप्त होने पर कर्म मनुष्य को बन्धन में नहीं डाल सकते। अर्थात् दर्शन मानव को सम्पूर्ण ज्ञान से परिचित कराता है। सुकरात ने दर्शन को आन्तरिक अध्ययन की ओर मोड़ा और कहा कि आत्म ज्ञान ही दर्शन का मुख्य उद्देश्य है।

दर्शन जीवन के हर क्षेत्र का दर्पण है। विश्व व्याप्त समस्यायें और जीवन का आधार हमारे नैतिक मूल्यों को स्थापित करने में सुव्यवस्था चलाने में सहायक हैं। सभी प्रकार का ज्ञान प्रदान करने वाला है। आत्मा-परमात्मा का रुप ही दर्शन है। परमात्मा ने परमज्ञान का भंडार जो मनुष्य को दिया है दर्शन उसी का भंडार है। आकाश में मानचित्र की कल्पना के समान भारतीय दार्शनिक सिद्धान्तों को नहीं मानते अपितु अपनी चिन्तन-मनन की साधना मार्ग से ही सिद्धांतों की पुष्टि करते हैं।

''प्रायः सभी भारतीय दार्शनिक- पतंजलि, माधवाचार्य, रामानुज आदि धार्मिक पथों के प्रणेता रहे हैं। उनके विचारों का दृष्टिकोण एवं सिद्धांतों का समग्र रूप दर्शन तथा व्यवहारिक पक्ष धर्म है। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार दर्शन-सिद्धान्त एवं धर्म व्यवहार भी है आत्मज्ञान की प्राप्ति के उपरान्त दार्शनिक अपने विचारों को धार्मिक कार्योन्मुखी करता है। भारतीय विद्वज्जनों के मतानुसार परमब्रह्म प्राप्ति को जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य स्वीकार किया गया है। परिणामस्वरुप भारतीय दर्शन, कलायें, धर्म आदि सभी इस ओर आकृष्ट एवं प्रवर्तित है। भारतीय दर्शन में मोक्ष-प्राप्ति, आत्मा-परमात्मा, इहलोक-परलोक, कर्मफल सृष्टि और सृष्टिकर्त्ता आदि विषयों का समावेश है। अतः भारतीय दर्शन गहन चिन्तन का विषय है। इसलिए सामान्य चिन्तक और अध्येता इसमें भाषा की जटिलता, बुद्धि के लिये नीरस एवं जटिल प्रक्रिया देखकर इसे त्याग देते हैं। परन्तु वास्तव में दर्शन आत्मज्ञान प्राप्ति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं सफल माध्यम है। यह मानव सम्बन्धी निजी क्रिया-कलापों का विषय है। दर्शन हमें अपने मौलिक धार्मिक विश्वासों को सुदृढ़ आधार प्रदान करने और संशय मुक्त करने में हमारी सहायता करता है।''[4]

''प्राचीन हिन्दुओं ने दर्शनशास्त्र के उच्चशिखर को छू लिया था, वे स्वाभाविक रुप से दार्शनिक थे, यद्यपि वे स्वतंत्र विषय के रूप में दर्शन से अवगत नहीं थे, परन्तु उनके क्रिया-कलाप ब्रह्म सम्बन्धी दार्शनिक अनुसंधानों, विभिन्न कलाओं, धार्मिक विश्वासों, नीतियों और तर्कों के बल पर चलते रहे। इसलिए मैक्समूलर ने भारत को 'दार्शनिकों का देश' कहा है। डा0 देवराज के अनुसार- दर्शन सांस्कृतिक अनुभूति का विश्लेषण, व्याख्या तथा मूल्यांकन करने का प्रयत्न है।[5]

दर्शन, स्वतन्त्रता, सत्ता, मोक्ष एव ज्ञान का साधन है। ज्ञान प्राप्त होने पर मनुष्य सत्य पथ पर चलता है सत्य पर चलने से, स्वतन्त्रता, सत्ता एवं मोक्ष का मार्ग बहुत सहज हो जाता है क्योंकि सुन्दर कांड में भगवान, कहते हैं- मोहे छल-छिद्र कपट नहिं भावा, भगवान भी सत्य एवं काम-क्रोध, मद्-लोभ से मुक्त स्वच्छ स्थान की खोज में रहते हैं यदि इनमें से कोई भी एक अस्वच्छता रहती है तो भगवान के तेज का वहां टिक पाना सम्भव नहीं होता। सम्मवतः दर्शन इसी भगवत दर्शन और मोक्ष का मार्ग दिखता है उसे सहज बनाता है। भारतीय मनीषियों, ऋषि-मुनियों ब्राह्मणों ने मत्रों, ग्रंथों दोहों, चौपाईयों के माध्यम से ईश्वर की सत्ता के प्रति आस्था व्यक्त की गई है। भारतीय इतिहास के विभिन्न धार्मिक ग्रन्थ भी जीवन मुक्ति दर्शन का संकेत देते हैं। हिरियन्ना के मतानुसार- भारतीय दर्शन की प्रमुख उल्लेखनीय विशेषता यही है कि ज्ञान जीवन के लिये अनिवार्य है। सदियों से जितनी विचार-पद्धतियां यहां विकसित हुई उनका उद्देश्य ज्ञान की खोज करना ही रहा और हर विचार पद्धति में इसका चिन्तन भी हुआ। खोजे या पाये हुए सत्य को किस प्रकार जीवन की व्यवहारिक समस्याओं को हल करने का साधन बनाया जा सकता है। दर्शनशास्त्रीय खोज का अन्तिम लक्ष्य तत्वज्ञान के साथ-साथ वास्तविक स्वतन्त्रता अथवा मोक्ष भी रहा है।[6]

अतः हमारा दर्शन, जीवन तथा उससे सम्बन्धित है विभिन्न कोटियों की सांस्कृतिक अनुभूतियों का विश्लेषण भी करता है और उसकी व्याख्या भी किन्तु इन क्रियाओं का प्रयोजन यही है कि उन अनुभूतियों अथवा व्यापारों का मूल्यांकन हो सके। दर्शन के मुख्य तीन विभाग- तर्कशास्त्र, आचारशास्त्र तथा सौन्दर्यशास्त्र हैं, परन्तु दार्शनिक क्रिया का सर्वोच्च रूप धर्म तथा मोक्ष भी है, जो कि मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य माना गया है।[7]

भारतीय दर्शन आस्तिक और नास्तिक दो भाव प्रकट करता है। नास्तिक जो सामान्यतः ईश्वर में विश्वास न करता हो जिनमें जैन, बौद्ध तथा चार्वाक् हैं। आस्तिक- जो ईश्वर में विश्वास करता है न्याय, सांख्य, योग, वैशैषिक, पूर्वमीमांसा और उतरमीमांसा। मनुस्मृति ने वेद निंदक को नास्तिक कहा है। मनु के अनुसार भारतीय दर्शन पूर्णतया वेदों पर आद्धृत है।

भारत में हिन्दू धर्म में दर्शन की मीमांसा लगभग समान है। वे एक धर्म ईश्वर ब्रह्म-सत्ता, आत्मा का परमात्मा से मिलन को अन्तिम लक्ष्य मानकर परम आनंद में विश्वास रखते हैं। भारतीय दर्शन साधक की दर्शनावस्था का संदेश देता है। भगवान के प्रति अटूट श्रद्धा से अमरत्व की प्राप्ति होना तथा दूरगामी परिणाम उस परमसत्ता का लाभ, साधना, तपस्या, त्याग के माध्यम से किया जा सकता है दर्शन का परमलक्ष्य यही है।

दर्शन से तात्पर्य है असाधारण दिव्य दृष्टि द्वारा सृष्टि की प्रत्येक वस्तु का दृश्यावलोकन तथा तत्वावलोकन करना। दर्शन का कार्य अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से यथार्थ रहस्य का उद्घाटन करना है अतः तत्व का दूसरा नाम तत्व दर्शन भी है। क्योंकि तत्वबोध करना ही इसका प्रमुख कार्य है। तत्व को ही दार्शनिक अन्तिम सत्य की संज्ञा से अभिहित करते हैं। तत्व दर्शन सत्य-दर्शन भी कहलाता है। जहां दर्शक केवल दो चक्षुओं से देखता है, वही दार्शनिक का तृतीय नेत्र उसकी तृतीय दिव्य दृष्टि होता है, जिससे वह तत्व बोध या सत्योपलब्धि करता है।[9]

भारतीय दर्शन संसार में सभी वस्तुओं का नश्वर होना मानकर अन्धकार को दूर कहता है। दर्शन ईश्वर पर पूर्ण विश्वास दिलाता है।

भारतीय दर्शन का स्वरुप विषय एवं उद्देश्य आध्यात्मिक अमरत्व प्राप्त करने का मार्ग है। भारतीय दर्शन जीवन दर्शन है, यह पाश्चात्य दर्शन के समान बौद्धिक व्यायाम नहीं वस् परम लक्ष्य तक पहुंचाने वाला पथ प्रर्दशक भी है। यह केवल बौद्धिक जिज्ञासा ही शान्त नहीं करता, अपितु उचितानुचित का बोध भी कराता है।[10]

चतुर्दिक मनुष्य आज भौतिक सुख साधनों को जुटाने की होड़ में लगा हुआ है जो उसकी आवश्यक आवश्कता है उसके अतिरिक्त कुछ उच्चतर जीवन के आदेश एवं मूल्य हैं जैसे शान्ति, सरलता, आस्था, प्रेम कला का आनंद एवं संगीत जिनका चिन्तन, मनन, अध्ययन करके अपने निश्चित ध्येय को पूरा करना एवं मोक्ष को प्राप्त करना दर्शन का प्रमुख कार्य है। कुछ बातें अनुभव की जाती हैं व्यक्त नहीं की जा सकती दर्शन ऐसी स्थिति में बड़ा सहायक होता है। दर्शन सभी क्षेत्रों में सहायक है। ईश्वर जगत-जीव ब्रह्म-माया के साथ-साथ धर्मशास्त्र ज्ञान तर्कशास्त्र नीतिशास्त्र और कला सम्बन्धी सौन्दर्य शास्त्र भी निहित है।

व्यावहारिक जीवन में आनंद एवं कल्याण दो व्यापक मूल्य है। जिनके अंतर्गत सभी मूल्य आ जाते हैं। आनंद में मानव आत्मशुद्धि करता है। इसमें आत्मनः कामाय की भावना निहित है। कल्याण के दृष्टिकोण में स्वहित के साथ-साथ सर्वहित की भावना भी निहित रहती है। ये ही मूल्य नैतिकता एवं धर्मपरायणता आदि भावों से भी प्रेरित होते हैं। इन्हीं के आधार पर संस्कारों को स्थापित किया जाता है। संस्कृत की सूक्ति- 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस्सिद्धिः सः धर्मः' के अनुसार जिससे मानव का पार्थिव कल्याण हो, वह धर्म है। इन्हीं संस्कारों से मानव का मनोवैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक विकास भी समृद्ध होता है। इन्हीं के आधार पर सामाजिक चेतना एवं व्यक्तित्व का विकास भी होता है।[11]

डा0 नागेन्द्र के अनुसार- ये मूल्य मनोवैज्ञानिक आनन्दोन्मुख होने पर रागात्मक मूल्यों में और कल्याणोन्मुख होने पर सांस्कृतिक मूल्यों में निमग्न हो जाते हैं।[12]

भगवान् श्रीकृष्ण ने धर्म अर्थ काम, मोक्ष को मनुंष्य के सफल जीवन तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए अत्यन्तावश्यक माना है।

डा0 नागेन्द्र ने इन मूल्यों का विस्तार से वर्णन किया है। उन्होंने अन्य कलाओं के साथ-साथ विशेषकर संगीत कला द्वारा इन मूल्यों को साधा है। उनका मत है कि रामायण, महाभारत तथा पुराण आदि में संगीत, चित्र और स्थापत्य आदि कलाओं

का स्थान-स्थान पर विस्तार से उल्लेख मिलता है। गीत-नृत्य का पर्व उत्सव आदि सामाजिक समारोहों तथा यज्ञादि धार्मिक अनुष्ठानों में अत्यन्त मनोयोगपूर्ण प्रयोग होता था, संगीत मनुष्य के सुख-दुख प्रणय, शौर्य, नैतिक जीवनचर्या तथा जन्म मरण आदि का सहचार था। इसी प्रकार मूर्ति आलेख तथा वास्तुकलाओं का सौन्दर्य ऐहिक जीवन की समृद्धि तथा देवपूजा आदि का साधारण उपकरण था, अतः धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष (अर्थात् नैतिक सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों) के साथ सौन्दर्य का घनिष्ठ सम्बन्ध था, किन्तु यह सम्बन्ध साधक साध्य सम्बन्ध था अर्थात् विभिन्न कलायें अन्यान्य जीवन मूल्यों की साधक थी।[13]

प्राचीन साहित्य में कला के सौन्दर्य का स्वतंत्र अस्तित्व देखने को नहीं मिलता। यद्यपि वैदिक ऋचाओं का सौन्दर्य पूरे विश्व पटल पर छाया हुआ है, रामायण, महाभारत इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। रामायण एवं महाभारत की सौन्दर्यानुभूति प्रत्येक व्यक्ति को झकझोर देती है और मानसिक भूख शांत करके परमानंद की अनुभूति कराती है। रामायण एवं महाभारत का रूप स्वरों की मधुरता, संगीतात्मकता में कला का परम सौन्दर्य है।

भारतीय दार्शनिक, चिन्तक, आत्मा-परमात्मा के सौन्दर्य एवं सत्य के रसास्वादन कर उसकी सत्यता को स्वीकार कर सौन्दर्य के भावात्मक पक्ष से आनन्दात्मक अनुभूति करते आये हैं। सौन्दर्य अप्रत्यक्ष अनुभूति है जिसके आधार पर उपनिषद् योग दर्शन, वेदान्त तथा अन्य धर्म ग्रन्थों का प्रणयन हुआ।

डा0 नागेन्द्र ने योगदर्शन के स्वरूप प्रज्ञा को एकाग्रचित साधना माना है। न्याय दर्शन में वर्णित ज्ञान और प्रभा के भेदों में स्मृति तथा सृजनात्मक कल्पना की अनुभूतियां मानी न्याय में प्रभा के चार भेद माने गये हैं- प्रत्यक्ष अनुमिति, उपमिति और शब्द जो कि सादृश्यमूलक ज्ञान (मूर्ति चित्र कला आदि) व श्रवणेन्द्रिय ज्ञान- संगीतादि मे लागू किये गये। सांख्यदर्शन में पंचतन्मात्राओं के अर्न्तगत रूप का विवेचन हैं। पांच ज्ञानेन्द्रियों में प्रत्येक का अपना-अपना महत्व माना गया है और सौन्दर्यशास्त्र तथा कलाओं में अपनी-अपनी विधियों एवं विशेष क्षेत्रों के अनुसार अपनाया गया है दर्शन में ज्ञान की पराकष्ठा अर्थात् वेदान्त में यद्यपि विश्व सौन्दर्य को मिथ्या प्रपंच माना गया है तथापि यह सत्य है कि इनका भारतीय सौन्दर्यशास्त्र के ग्रंथों पर गहरा प्रभाव पड़ा है।[14]

कला अनुभूति का मूलरहस्य वेदान्त के सूत्रों से भी प्राप्त हुआ है। बिम्ब विधान कला के स्रष्टा (कलाकार) और भोक्ता-(श्रोतावृन्द) आदि का रहस्य निहित है। जिनका प्रयोग भारतीय कलाओं में किया गया। इस प्रकार प्राचीन सांख्य दर्शन के अनुसार आज की दुनियां में कोई भी स्त्री या पुरुष सामान्य रूप से किसी भी प्रकार से विरक्त या निष्काम की अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता। उसकी दुनियां में तो सुख-दुख, तनाव-संघर्ष, सुन्दर-विकृत रुप अनुभव करने का चक्र चलता रहता है। लेकिन जो व्यक्ति प्रकृति या चेतना और पुरुष यानि ब्रह्मा के बीच के भेद को पूर्णतः जान लेता है और उसका पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता है तो वह उस दशा में पहुंच जाता है, जहां सुख-दुख, प्रेम-घृणा सुन्दर-असुन्दर के बीच का भेदभाव समाप्त हो जाता है- और वह दीपक की लौ के समान पूर्णतः शांत हो जाता है। यह वह अवस्था है जिसे भगवत गीता में पूर्ण अस्तित्व कहा गया है।[15]

साख्य दर्शन कहता है कि कष्ट के बिना मानव कभी पूर्ण नहीं बनता जब तक मनुष्य कष्ट नहीं झेलता तब तक उसका मनुष्यत्व नहीं जागता उसमें पशु प्रवृत्ति ज्य़ादा हावी रहती है। दूसरों के दुख का अनुभव स्वयं दुख झेलकर ही किया जा सकता है पूर्ण मानवता एवं पूर्णता प्राप्त करने हेतु दुःख, कष्ट देखना ज़रूरी है, सुख की अनुभूति भी तभी होती है।

डा0 बीरबाला भावसार के अनुसार- कपिल मुनि का सांख्यदर्शन ललित कलाओं के अध्ययन का आधार माना जाता है। उसमें भौतिक व अधिभौतिक दोनों तत्वों का उल्लेख्य भी महत्वपूर्ण है।.....प्राचीन काल से ही भारतीय कलाओं में इस दैवीय तत्व की खोज होती रही है। जिसे भाव रस एवं आत्मानुभूति आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। अनेक श्रेष्ठ और आध्यात्मिक कलाकारों ने इनका अनुभव तथा साक्षात् दर्शन भी किया है।[16]

आज भागदौड़ की ज़िन्दगी में एक ही रास्ता बच जाता है जो उसे कला की स्तुति की तरफ ले जाता है और यही उसकी आत्मा को वास्तविकता से साक्षात्कार करवाता है।

श्री नीहार रंजन राय के अनुसार- 'कला चूँकि प्रकृति जगत तथा विचारों को मूर्तरूप देती है, इसलिये वह मानस में एक ऐसे भाव को जन्म देती है जिसे निर्वैयक्तिक कहा जा सकता है।[17] यह भाव तब उत्पन्न होता है जब कलाकृति अपनी उत्कृष्टता

की ओर बढ़े और उसमें प्रस्तुत विचार स्थितियां, विभावनायें वास्तविक जीवन के यथार्थ और अयथार्थ से कोई सम्बन्ध न रखें। वह मानव की निष्काम भावनाओं को उभारे और उसे सुख-दुख की अनुभूति न हो। इसी आध्यात्मिक अवस्था को मानव अपनी कला में प्रकृति की श्रेष्ठतम् उपलब्धियों के समान व्यक्त करता है।[18]

जिस भारतीय दर्शन आध्यात्म से जुड़ा है इसी प्रकार संगीत भी।

पं. जगदीश नारायण पाठक के अनुसार- संगीत शास्त्र का संबंध सभी भारतीय दर्शन से माना गया है। संगीत में षड्दर्शन का समन्वय होता है। न्याय और वैशैषिक कार्य-कारण सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। इन दोनों दर्शनों के मतानुसार बिना किसी कारण के कोई कार्य उत्पन्न नहीं होता है संगीत में भी कार्य कारण सिद्धान्त का अनुभव किया जा सकता है। संगीत का आधार नाद, नाद से श्रुति, श्रुति से स्वर, स्वर से सप्तक, सप्तक से थाट, थाट से राग और राग से सम्पूर्ण संगीत की सृष्टि होती है। ऐसी दशा में श्रुति स्वर, सप्तक थाट और राग उत्पन्न होते हैं।

मीमांसा में वेद विहित कर्मों से धर्म का निरुपण किया गया है। मीमांसा का प्रथम सूत्र है। ''अथातो धर्म जिज्ञासा'' संगीत के माध्यम से हम ईश्वर के गुणों का गान करके धर्म को उपार्जित करते हैं। सामगान से लेकर सूर कबीर, तुलसी, मीरा आदि के भक्तमय पदों को गाते-गाते संगीत साधक ईश्वर के परमभक्त हो जाते हैं।

अर्थात् जो लाभ मीमांसा से प्राप्त होता है जो कि कर्म अर्थात् मानव की कर्म विद्या का मापदण्ड है। वही लाभ संगीत से भी प्राप्त होता है।

दर्शन एवं संगीत में योग-दर्शन द्वारा भी सामंजस्य स्थापित किया गया है। ताकि मनोविकारों और त्रुटियों को दूर करके तल्लीनता प्राप्त की जा सके, योग साधना से हमारा मन एवं चित्त एवं मन शुद्ध होता है।

योगश्चितवृत्ति निरोधः अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध करना ही योग है। इसी प्रकार संगीत साधना भी एक प्रकार की योग साधना है। संगीत साधना करते करते- जब साधक उसके मार्धुय में तल्लीन हो जाता है तब वह वाह्य जगत को भूल जाता है। वह अपने अन्तःकरण में आलौकिक आनंद का अनुभव करने लगा है।[19] योग की तरह सतत् अभ्यास, स्वर साधना एवं गुरु तथा आराध्य देव की उपासना करके दूर किया जा सकता है। जिस प्रकार साधक के चित्त की वृत्तियों का निरोध करने में योग साधना सहायक होती है उसी प्रकार संगीत साधना भी चित्तवृत्तियों का विरोध करती है।

सत्कार्यवाद विधि पर आधारित इस दार्शनिक सिद्धान्त का अर्थ है कि कारण मे कार्य आरम्भ से ही विद्यमान रहता है जैसे तिल में तेल विद्यमान होता है अर्थात् किसी वस्तु का होना अथवा न होना पूर्व निश्चित ही है। इसी को सत्कार्यवाद माना गया है इसके अनुसार वही प्रकट होता है जो पहले से विद्यमान होता है। जैसे वृक्ष से बीज और बीज से वृक्ष, संगीत में भी सत्कार्यवाद का सिद्धांत लागू होता है। जैसे नाद के बिना स्वर सम्भव नहीं है। नाद का सदैव वायुमण्डल में ध्वनित होते रहने का सिद्धान्त इसी तथ्य का प्रतिपादन करता है। इसी प्रकार यदि किसी गायक वादक, नर्तक के अन्तःकरण में गायन वादन तथा नर्तन के जन्मजात संस्कार पहले से ही विद्यमान नहीं हैं तो योग्य से योग्य गुरु से शिक्षा ग्रहण करने पर से संगीत का ज्ञान नहीं हो सकता।[20]

वेदान्त दर्शन ज्ञान तत्व की अमूल्य परम्परा है। जिसका अर्थ सत्संगति से है। सत्संगति से मनुष्य बहुत कुछ सीखता है। सत्संगति के बारे में कहा गया है- ''सत्संगति किं न करोति पुसांम'' वेदान्त के अनुसार- श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन से साधक का अन्तःकरण पवित्र होता है। अन्तःकरण का ज्ञान चक्षु खुल जाने से अज्ञान दूर हो जाता है और सांसरिक बंधनों से मुक्ति मिल जाती है और मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

साधारण व्यवहार में हम कला को मनोरंजन चित्तरंजन करने का साधन मानते हैं, कला के दार्शनिक तत्वों में मनोवृत्तियों का सृजनात्मक रूप प्रदान करने का प्रयास किया जाता है। कला के माध्यम से मानव हृदय के उद्गार नव स्फूर्ति, नव चेतना का संचार होता है। कला का अपना रूप है। अपने अंग हैं ये पूर्व जन्म कृत एकत्रित साधना से एकत्र होते हैं जो कुछ ही लोगो को प्राप्त होते हैं। कला सत्यम् शिवम् सुन्दरम् से साक्षात्कार करा मानव को अमरत्व की ओर ले जाती है। ये आध्यात्म से जुड़े होते हैं, कला मानव मन को झकझोर कर उसे द्रवित कर देती है।

हरद्वारी लाल शर्मा के अनुसार- कला की प्रामाणिकता का प्रश्न सदैव उठता रहा है। सारे विवादों से यही निष्कर्ष सामने आया है कि कला की सच्चाई प्रामाणिकता उसकी कलात्मकता ही हो सकती है और कुछ नहीं, विज्ञान धर्म, नीति, दर्शन, समाज

आदि उसके अपव्यय हो सकते हैं कलात्मक रूप गुंफित किन्तु रूप स्वयं अवयवी है। अपनी सदैव रूप संपदा और रूप विधानों के साथ।[21]

भारतीय दर्शन में किसी भी आस्तिक या नास्तिक सम्प्रदाय ने कला एवं उसके सौन्दर्य पर विचार व्यक्त नहीं किये। साधना को ही अन्तिम मोक्ष का लक्ष्य बताया। डा0 श्यामलता गुप्ता के मतानुसार- दर्शन में ज्ञान को दो प्रकार का मानते हैं।

एक है विश्व संबंधी ज्ञान अर्थात् तत्व मीमांसा जिसमें जीव जगत आत्मा पुरुष ब्रह्म आदि तत्वों के विषय में जानकारी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है और दूसरा है प्रमाण शास्त्र जो कि ज्ञान के विविध स्रोत प्रमाण वैधता आदि पहलुओं पर विचार करता है। कर्म के विषय में मुख्य रूप से भारतीय सम्प्रदाय निष्काम कर्म या अनासक्ति को ही मोक्ष-प्राप्ति के लिये उचित मार्ग मानते हैं।[22]

समस्त विश्व के दार्शनिक प्रकृति के स्वाभाविक सौन्दर्य रंग-बिरंगे पुष्प-पशु-पक्षी, वृक्ष-वनस्पति ध्वनियां सूर्य चन्द्रमा, जल आदि से प्रभावित होते हैं, जड़-चेतन में स्वाभाविक सौन्दर्य है तथा कला रूप जब धारण करती है तब यह कला मानव को अपने मोह-पाश में बांध लेती है, प्रकृति के मोहपाश से प्रेरणा पाकर प्रकृति को अपना आधार मानकर ही मनुष्य कलाकार कहलाया, वह विभिन्न प्रकार की कलाओं की अभिव्यक्ति अपनी रूचि एवं क्षमता के अनुसार करता है। संगीत की उत्पत्ति भी प्रकृति से प्रभावित होकर हुई जिस प्रकार झरनों की कल-कल ध्वनि, बादलों की गड़गड़ाहट-गर्जन पशु पक्षियों की ध्वनियों का अनुकरण, बांस के जगलों से आ रही ध्वनियां इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

भारतीय दर्शन साहित्य संगीतमय है। भारतीय दर्शन मूलतः आध्यात्मिक होने के कारण विभिन्न कलाओं तथा साहित्य पर इसका प्रभाव दृष्टिगत होता है वैदिक काल से ही दर्शन एवं संगीत का सम्बन्ध रहा है। दोनों एक दूसरे से प्रभावित रहे हैं वेद दर्शन है तो उनके मंत्र गेय होने के कारण संगीतमय हैं। स्वरों की वैदिक और आधुनिक संज्ञायें, षड्ज, रिषभ आदि उपनिषदों तथा संहिताओं में प्राप्त होती है। दर्शन आध्यात्मिक है, संगीत भी आध्यात्मिक है। परममंगल कारक है। हमारे देश के बड़े-बड़े मनीषी दार्शनिक नारद, तुम्बक, निम्बकाचार्य तथा त्यागराज, हरिदास चैतन्यमहाप्रभु आदि भक्तों- गायकों ने सूर, कबीर, तुलसी, मीरा नन्ददास, विट्ठल दास आदि पर स्वपिताओं ने संगीत और आध्यात्म का अटूट सम्बन्ध स्थापित किया। वास्तविकता यह है कि भारतीय धर्म-दर्शन की प्रवृत्ति इसके उद्भव से ही सत्य की खोज रही है, सत्य की खोज से तात्पर्य उस परमपिता परमेश्वर के अस्तित्व को जानना- समझना है जो इस सूपर्ण सृष्टि का नियामक है। उसकी खोज की खोज में ही रसात्मकता है ध्यान साधना के मार्ग में प्राप्त होने वाला आत्मिक रस ही संगीत है। इसीलिए वेदों से लेकर आजतक के जितने भी साधक मनीषी रहे उनकी रचनाएं गद्यमय न होकर पद्यमय हैं, जिनमें नितान्त संगीतात्मक तथ्य उपलब्ध हैं।

भारतीय संगीत नामक पुस्तक में आचार्य उत्तर राम शुक्ल लिखते हैं- ''समस्त यौगिक चमत्कारों का प्रादुर्भाव आत्म-ज्ञान के बिना कदापि नहीं हो सकता। प्राचीन आचार्यों ने आत्मा के रसात्मक स्वरूप को ही प्रतिपादित किया है। अतः आत्मा के रसमय स्वरूप का ज्ञान प्राप्त होने के अनन्तर रसमयी स्वर-साधना के साथ-साथ पंचतत्वों से बने हुए देह-देह के पांचों तत्वों पर प्रभुत्व हो जाने के बाद ही चमत्कार पूर्ण उपलब्धियों को प्राप्त किया जा सकता है। विविध दर्शन शास्त्रों के द्वारा मानव-जीवन का परम ध्येय आत्म शक्ति एवं परमात्म शक्ति का आभास हो जाना ही माना गया है। अतः समग्र संसार की उत्पत्ति परम आत्म (परमात्म) शक्ति द्वारा ही हुई है, जो नाद बिन्दु एवं कलाओं से भी अतीत मानी गई है। आत्म शक्ति उसी परमात्म शक्ति का प्रतिबिम्ब है। अतः उसे रसात्मक स्वरूप में पाकर ही स्वर शक्ति के अन्तर्गत उपस्थित आथाह भण्डार को प्राप्त किया जा सकता है।.....देह के अन्तर्गत सूक्ष्म शरीर में नव-विध चक्रों की सिद्धि यौगिक प्रकारों पर अवलम्बित होती है। चाहे भक्ति-योग, लय-योग, राज-योग अथवा गुरु प्रदत्त योग का कोई सा भी प्रकार हों- किसी एक तत्व पर विजय प्राप्त कर लेना साधक की महान साधना मानी जाती है।''[23]

इस संसार में जितनी भी कलाएं हैं चाहे वह काव्य है या चित्रकारी संगीत पदा में गायन है या नृत्य सभी की चरम स्थिति आध्यात्मिक दर्शन के समान आत्मदर्शन कराने की स्थिति में मनुष्य को पहुँचा देती है भारतीय दर्शन हमारे जीवन में संगीतात्मक होकर आनन्दातिरेक की स्थिति में पहुँचाकर परमात्म दर्शन कराना है। यह प्रकृति का विशुद्ध सौन्दर्य ही तो है जिसने आध्यात्म की ओर मनुष्य को प्रवृत्त किया, उसे उसी साधना में संगीत का अलौकिक दर्शन हुआ और वही अलौकिक दर्शन संगीत (जिसका हम अनुगमन करते हैं) का प्रादुर्भाव करने में समर्थ हुआ हमारे उन ऋृषियों ने संगीत के रूप में हमें विभिन्न राग, वाद्ययंत्र

आदि को दिया जिन परम्पराओं को हम आज तक अपने साथ लेकर चल रहे हैं तथा आज नवशोध हमारे सामने आते हैं यही संगीत दर्शन है यही आध्यात्म है। इन सब पर कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि भारतीय संगीत केवल मनोरंजन का साधन न होकर परमात्मा की प्राप्ति का साधन भी है।

## स्रोत

[1]दर्शन की नवीन रूपरेखा -डॉ0 एस0 एन0 गुप्ता, पृष्ठ संख्या 4

[2]वैदिक संस्कृति और दर्शन -डॉ0 विश्वम्भर दयाल, पृष्ठ संख्या 176

[3]*(अ) Philosophy is essentially a spirit of wethod of approaching experience raher these a body of conclusion about experience.*

(ब)दर्शन की नवीन रूपरेखा -डा0 एस0एन0 गुप्ता

[4]भारतीय संगीत का इतिहास (आध्यात्मिक एवं दार्शनिक) डा0 सुनील शर्मा, पृष्ठ संख्या 170)

[5]संस्कृति का दार्शनिक विवेचन -डा0 देवराज, पृष्ठ संख्या 248

[6]कला अनुभव -हिरियन्ना, पृष्ठ संख्या 21

[7]भारतीय संगीत का इतिहास आध्यात्मिक एवं दर्शन -डा0 सुनीता शर्मा, पृष्ठ संख्या 171

[8]*''नास्तिको वेद निन्दकः* (मनुस्मृति 2।11)

[9]भारतीय दर्शन -डा0 वी0 एन0 सिंह एवं डा0 आशा सिंह

[10]वही, पृष्ठ संख्या 5

[11]भारतीय संगीत का इतिहास-आध्यात्मिक एवं दार्शनिक -डा0 सुनीता शर्मा

[12]डा नागेन्द्र -सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ संख्या 161

[13]वही, पृष्ठ संख्या 171

[14]डा0 नागेन्द्र -सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ संख्या 59-60

[15]नीहार रंजनराय -भारतीय कला के आयाम, पृष्ठ संख्या 72

[16]डा0 बीरबाला भावसार -आल इण्डिया ओरियन्टल कांफ्रेंस में पठितलेख 1989

[17]नीहारजंनराय, पृष्ठ संख्या 72, भारतीय कला के आयाम

[18]डा0 सुनीता शर्मा -भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ संख्या 177

[19]पं0 जगदीश नारायण पाठक -निबंध संगीत, पृष्ठ संख्या 186

[20]डा0 सुनीता शर्मा -भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ संख्या 17

[21]डा0 हरद्वारी लाल शर्मा -कलादर्शन, पृष्ठ संख्या 7

[22]डा0 श्यामलता गुप्ता -सौन्दर्य तत्व मीमांसा, पृष्ठ संख्या 216

[23]भारतीय संगीत -ले0 उत्तर राम शुक्ला, पृष्ठ संख्या 212

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9,39-43**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 22 दिसम्बर 2014

# आसावरी थाट के उत्तरांगवादी राग

डॉ. रूपाली जैन*

*लेखक का घोषणा-पत्र*

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *आसावरी थाट के उत्तरांगवादी राग* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *रूपाली जैन* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

उत्तर भारतीय संगीत पद्धति में रागों का गायन समय, दिन और रात्रि के चौबीस घण्टों को दो भागों में बॉट दिया है, दिन के बारह बजे से रात्रि के बारह बजे तक ''प्रथम भाग'' माना जाता है। रात्रि के बारह बजे से दिन के बारह बजे तक ''द्वितीय भाग'' कहा गया है। प्रथम भाग ''पूर्वभाग'' और द्वितीय भाग को ''उत्तर भाग'' कहते हैं।[1]

जब संगीत में रागों के लिए ''अंग'' शब्द का प्रयोग किया जाता है तब उसका तात्पर्य यह है कि राग का प्राधान्य, उस भाग में निहित है।

*उत्तरांगवादी राग*

जिन रागों का वादी स्वर सप्तक के उत्तरांग अर्थात् ''प ध नि सां'' में से कोई हो, वे ''उत्तरांगवादी राग'' कहलाते हैं।

उत्तरांगवादी शब्द उत्तर + अंग + वादी इस प्रकार बना है।

उत्तर का अर्थ है बाद का या अंतिम, अंग अर्थात् भाग, और वादी का अर्थ राग के वादी स्वर से है। अतः पूर्ण शब्द का अर्थ हुआ उत्तर या अंतिम भाग में जिसका वादी स्वर हो, ऐसा राग।

आधुनिक युग की महान विभूति पं0 विष्णु नारायण शतखण्डे द्वारा 10 थाट की अवधारणा की गई है।

आसावरी थाट उनमें से एक है। आसावरी थाट का आश्रय राग आसावरी है। सौवीर, सौविरी, अ-सावेरी से होते हुए आसावरी नाम वर्तमान में प्रचलित है। दक्षिण भारत में इसे 'नट भैरवी' कहते हैं।

राग - आसावरी

वादी स्वर कोमल धैवत (ध)

आरोह - सा रे म प ध सां

* अतिथि प्रवक्ता, भगतसिंह शासकीय स्नात्कोत्तर महाविद्यालय [जावरा] रतलाम (मध्य प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)



© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

अवरोह - सां नि ध प म ग रे सा[2]

राग - कोमल ऋषभ आसावरी
वादी स्वर - कोमल धैवत (ध)
आरोह - सा रे म प ध सां।
अवरोह - सां नि ध प म ग रे सा।

राग जौनपुरी
वादी स्वर - कोमल धैवत (ध)
आरोह - सा रे म प ध नि सां।
अवरोह - सां नि ध प म ग रे सा।[3]

राग - देवगंधार
वादी स्वर - कोमल धैवत (ध)
आरोह - सा ग म प नि सां।
अवरोह - सां नि ध प म ग रे सा[4]

राग - देसी
वादी स्वर - पंचम (प)
आरोह - सा रे म प नि सां।
अवरोह - सां नि ध प म ग रे सा।[5]

राग - कोमल देसी
वादी स्वर - पंचम (प)
आरोह - सा रे म प नि सां।
अवरोह - सां नि ध प म ग रे सा।[6]

राग - गांधारी
वादी स्वर - कोमल धैवत (ध)
आरोह - सा रे म प ध नि सां।
अवरोह - सां नि ध प म ग रे सा।[7]

राग - खट
वादी स्वर - कोमल धैवत (ध)
आरोह - सा रे ग म प नि ध नि सां।
अवरोह - सां नि ध प म ग रे सा।[8]

राग - झीलफ
वादी स्वर - कोमल धैवत (ध)
आरोह - सा रे ग म प ध नि सां।
अवरोह - रें सां नि ध प ग प म ग रे सा।[9]

राग - लाचारी तोड़ी
वादी स्वर - कोमल धैवत (ध)
आरोह - सा रे ग म प ध, प ध नि सां।
अवरोह - सां नि ध प, ध प म ग रे नि सा।[10]

राग - आनंद भैरवी
वादी स्वर - पंचम (प)
आरोह - सा रे ग म प ध सां।
अवरोह - सां नि ध प म ग रे सा[11]

राग - अमृत वाहिनी
वादी स्वर - कोमल धैवत (ध)
आरोह - सा ग म प ध नि सां।
अवरोह - सां नि ध म ग रे सा।[12]

राग - आदि भैरवी
वादी स्वर - कोमल धैवत (ध)
आरोह - सा ग रे ग म प ध सां।
अवरोह - सां ध प म प ग रे सा।[13]

राग - जोग भैरवी
वादी स्वर - कोमल धैवत (ध)
आरोह - सा रे ग म प ध सां
अवरोह - सां नि ध प रे सा।[14]

राग - नट भैरवी
वादी स्वर - कोमल धैवत (ध)
आरोह - सा रे ग म प ध नि सां।
अवरोह - सां नि ध प म ग रे सा।[15]

राग - कृपावती
वादी स्वर - कोमल धैवत (ध)
आरोह - सा रे ग प ध सां।
अवरोह - सां नि ध प ध म ग रे सा।[16]

राग - झंकार ध्वनि
वादी स्वर - कोमल धैवत (ध)
आरोह - सा रे ग म प ध नि सां।
अवरोह - सां नि ध प म ग रे सा।[17]

राग - नाटमंगल
वादी स्वर - धैवत (ध)
आरोह - सा ग ग म प ध नि सां।
अवरोह - सां नि ध प म रे ग रे सा।[18]

राग - भोगी
वादी स्वर - धैवत (ध)
आरोह - सा ग म प ध प ध नि सां।
अवरोह - सां नि ध प म ध प म ग[19]

राग - मॉझी
वादी स्वर - धैवत (ध)
आरोह - सा रे ग प ध ध नि नि सां
अवरोह - सां नि नि ध ध प म ग रे सा[20]

राग - शुद्ध देसी
वादी स्वर - धैवत (ध)
आरोह - सा रे म प ध नि सां
अवरोह - सां नि ध प म ग रे सा।[21]

राग - हेम क्रिया
वादी स्वर - धैवत (ध)
आरोह - सा रे ग म प ध नि सां।
अवरोह - सां ध प म रे ग म रे सा।[22]

राग - नटखट
वादी स्वर - पंचम (प)
आरोह - रे नि सा रे ग म प ध नि सां।
अवरोह - रें सां ध नि प म प ध म ग म रे सा[23]

राग - जोगवर्ण
वादी स्वर - पंचम (प)
आरोह - सा रे ग रे म प ध सां
अवरोह - नि ध प ध म प ग रे सा रे नि सा।[24]

राग - कोकिल पंचम
वादी स्वर - धैवत
आरोह - सा ग म प ध सां।
अवरोह - सां ध प म ग सा।[25]

राग - अड़ाणा
वादी स्वर - तार शड्ज (सां)
आरोह - सा रे म प, ध नि सां
अवरोह - सां ध नि प म प, ग म रे सा।[26]

राग - शोभावरी
वादी स्वर - कोमल धैवत (ध)
मुख्यांग - रेमपसां, धऽप, मपध, मपरे, सा।[27]

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[1]*संगीत विशारद* -प्रभू लाल गर्ग बसंत, पृष्ठ संख्या 192
[2]*हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति,* कृमिक पुस्तक मालिका भाग- 6, पृष्ठ संख्या 354, 355
[3]*संगीत आसावरी थाट अंक,* पृष्ठ संख्या 2
[4]*हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति,* कृमिक पुस्तक मालिका भाग- 6, पृष्ठ संख्या 340

[5]वही, पृष्ठ संख्या 305,
[6]''संगीत'' आसावरी थाट अंक, पृष्ठ संख्या 3
[7]*हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति,* कृमिक पुस्तक मालिका भाग- 6, पृष्ठ संख्या 329; संगीत आसावरी थाट अंक, पृष्ठ संख्या 7
[8]*हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति,* कृमिक पुस्तक मालिका भाग- 6, पृष्ठ संख्या 345; संगीत आसावरी थाट अंक, पृष्ठ संख्या 6
[9]''संगीत'', आसावरी थाट अंक, पृष्ठ संख्या 7
[10]अभिनवगीतांजली, भाग- 4, प. रामाश्रय झा, पृष्ठ संख्या 142
[11]राग विशारद, भाग- 1, डॉ. लक्ष्मीनारायण गर्ग, पृष्ठ संख्या 9
[12]राग विशारद, भाग- 1, पृष्ठ संख्या 110
[13]वही, पृष्ठ संख्या 110
[14]वही, पृष्ठ संख्या 114
[15]वही, पृष्ठ संख्या 115
[16]वही, पृष्ठ संख्या 111
[17]वही, पृष्ठ संख्या 114
[18]वही, पृष्ठ संख्या 116
[19]वही, पृष्ठ संख्या 117
[20]वही, पृष्ठ संख्या 117
[21]वही, पृष्ठ संख्या 122
[22]वही, पृष्ठ संख्या 123
[23]वही, पृष्ठ संख्या 124
[24]*'संगीत' आसावरी थाट अंक,* पृष्ठ संख्या 8
[25]*'संगीत' आसावरी थाट,* पृष्ठ संख्या 81
[26]हि. सं प. कृ पु. मा. श, 4, पृ. 698, 699
[27]अप्रकाशित राग, भाग- 1, ज. दे. पत्की, पृष्ठ संख्या 97

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,44-46
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 28 नवम्बर 2014

# हिन्दी साहित्य की प्रासंगिकता : दिशा और दशा

डॉ. मुन्नी देवी भास्कर*

*लेखक का घोषणा-पत्र*

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ *हिन्दी साहित्य की प्रासंगिकता : दिशा और दशा* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मुन्नी देवी भास्कर* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

"साहित्यकार रचता है संसार/ ज्ञान का, अनुभव का, संवेदना का, हमारे सामने/ और हम पाते हैं/ दुनिया को देखने की एक अभिनव दृष्टि/ यह समाज को दर्पण दिखलाता है/ उसके शब्दों की छेनी और हथौड़ी/ निरन्तर चलती है, युगानुरुप रूप गढ़ने को।"

महान साहित्य समाज का दर्पण नहीं बल्कि वह एक प्रति संसार की रचना करता है वह महज एक दस्तावेज नहीं बल्कि एक स्मारक होता है।

हर युग में मानव "अर्थ" [अस्तित्व] की खोज में भटकता है यहाँ तक कि एक आतंकवादी भी हिंसा के रास्ते समाज को ही बदलना चाहता है परन्तु साहित्य कान्तासम्मति की तरह उपदेश देकर और कभी फटकार की भाषा में और कभी मनुहार की वाणी में अपनी बात कहता है। साहित्य हृदय का उदात्तीकरण करता है, साहित्य का एक अपना अनुशासन होता है और कोई भी साहित्यकार किसी कला को सीधे न रखकर प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है जिससे भावक को आनन्द की प्राप्ति होती है। परिष्कृत आनन्द ही साहित्य का मूल उ्देश्य है।

कभी हमारे पूर्वजों ने संकेत किया था, "साहित्य-संगीत-कला-विहीन: साक्षात्पशु: पुच्छ विषाणहीन:।" सारा ज्ञान विज्ञान हासिल करने पर भी साहित्य अध्ययन के बिना कहीं हम सींग और पूंछ के बिना दो पैरों पर चलने वाला "पशु" तो नहीं बनते जा रहे हैं। मनुष्य होने का बोध ही हमें साहित्य और संस्कृति की ओर खींचता है और इसी संसार के लिये हमें सत् साहित्य के अध्ययन की प्रेरणा मिलती है जहाँ मानव "वामन" से "विराट" बनता है।

दुनिया की सभी भाषाओं में साहित्य रचा गया और आज भी लिखा जा रहा है सबके मूल में मनुष्य ही चिन्ता का विषय है मनुष्य की ही आकांक्षा, आशा, प्रणय, संघर्ष, रागद्वेष, घृणा, भय, कुण्ठा, यातना, विकार,

* एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महिला विद्यालय पी. जी. कॉलेज [कनखल] हरिद्वार (उत्तराखण्ड) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)



© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

वेदना जैसी संचारी भावनायें परिस्थिति जन्य उत्पन्न होकर स्थायी भाव के हिस्से होकर साहित्य में अभिव्यक्त होते हैं। साहित्यिक अभिव्यक्ति की इसी मंथन प्रक्रिया में कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि लिखे जाते हैं। साहित्य का माध्यम भाषा है और यह भाषा ही सम्प्रेषित होकर समाज को प्रभावित करती है।

हिन्दी साहित्य उस विराट् सागर की तरह है जिसके अन्तस्तल में अतीत से आगत तक अगणित उपादेय भाव रत्न भरे पड़े हैं।

उसमें समूची रचनाधर्मिता का गौरव समाया है, उसकी अपनी शक्ति है, अपना आधार है, बाजारवाद की आंधी उसमें चाहे जिमना विक्षोभ उत्पन्न करे उसके अस्तित्व को जर्जरित नहीं कर सकती परन्तु खेद का विषय है कि साहित्य के मनीषी ही यदि इसकी प्रासंगिकता पर प्रश्नचिन्ह लगाने लगे तो क्या कहा जाये साहित्य जो कि मानव समाज के हित व मानव मन को संस्कारित करने का प्रमुख माध्यम है यदि उसे रोटी कमाने का जरिया बनाया जाये तो भी गनीमत है, परन्तु यहाँ तो भूख के भी आगे फैशन और अंधी प्रतिस्पर्धा की दौड़ में उसको विकृत वैशाखियाँ लगाकर दौड़ लगाने को मजबूर किया जा रहा है यह कितनी हेय बात है जैसे वुंजड़ों के बाजार में सोना अपना मोल लगवाने को गिड़गिड़ाता फिरे।

हम कह सकते हैं कि यह समय की मांग है परिस्थितियाँ बदलती है, समाज बदलता है तो साहित्य के प्रतिमान भी बदलते हैं परन्तु मैं पूछती हूँ कि क्या मानव को, मानव बनाये रखने वाले मौलिक धर्म भी बदल जाते हैं ? मानव के शाश्वत विकास में जिस हिन्दी साहित्य का भारी योगदान रहा है उसे भी क्या अब बाजार के अनुकूल अपने को नये सिरे से गढ़ना होगा, आवश्यकता इस बात की है कि बाजार में व्याप्त मीडिया को हिन्दी साहित्य के अनुकूल बनाया जाये। हिन्दी साहित्य की उपादेयता को पूरे विश्व में इलैक्ट्रानिक मीडिया के माध्यम से बताया जाये। एक समय तक संस्कृत को मृत भाषा करार देकर कर्मकाण्ड के लिये या फिर वाचनालयों में दीमकों के द्वारा चाटने के लिये छोड़ दिया जा रहा था परन्तु कुछ मूर्धन्य मनीषियों के अथक् प्रयास से उसका विपुल साहित्य संसार के सामने उजागर हुआ और उसमें भरे अथाह ज्ञान के आगे संसार नतमस्तक हुआ, उसी की बदौलत योग और आयुर्वेद का डंका विश्व में बजने लगा। परन्तु हिन्दी भाषा के साथ कुछ अलग घटित हुआ, जैसे जीवित आदमी को ही बीमारियाँ लगती हैं वैसे ही इसकी जीवन्तता और लचीलापन तथा सबकुछ आत्मसात करने वाली प्रवृत्ति के कारण वैश्विक बाजार में इसका परिष्कृत रूप ही गायब है अब तो एक अजब कॉकटेल परोसा जा रहा है इसी का परिणाम है कि हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी को ठीक से हिन्दी का एक वाक्य बनाना तक नहीं आता है। अवधी व ब्रज भाषा में रचित साहित्य तो उसके सिरे के ऊपर से गुजर जाता है। इसमें व्याप्त रसानुभूति प्राप्त करना जो बड़ा दूर है इन विद्यार्थियों को हिन्दी साहित्य, बिना अध्ययन किये बस उत्तीर्ण होने का सरल रास्ता भर नजर आता है। कई उत्तीर्ण हो भी जाते हैं, क्योंकि हिन्दी साहित्य को भी विश्वविद्यालय ने कुछ लघु उत्तरीय प्रश्नों का पिटारा बना दिया है आज हिन्दी साहित्य का विद्यार्थी साहित्य की पुस्तकें खरीदना अपना धन अपव्यय होना समझता है जबकि वहीं विद्यार्थी अन्य विषयों की जैसे कि तकनीकि विषयों की हजारों रूपये की पुस्तकें खरीद लेता है तथा शिक्षा पर लाखों रूपये उसके परिजन खर्च कर सकते हैं। साहित्य का गहन अध्ययन कुछ विश्वविद्यालयों के शोधार्थिनों तथा कुछ साहित्यसेवी विद्वानों तक सीमित रह गया है उनमें भी आलोचना-प्रत्यालोचना शब्दों की जटिल कलाबाजियाँ तथा स्त्री और दलित विमर्श जैसे मु-ों को चुभलाते रहना ही आज की प्रवृत्ति बन चुकि है। कई नवोदित रचनाकार मर्मस्पर्शी रचनायें समाज को दे रहे हैं, परन्तु अधिकांशत: समाज की विकृति व जटिल मनोवृत्तियों को लेखन का आधार बनाकर विश्व के आगे कौन सा आदर्श प्रस्तुत करना चाहते हैं, समझ में नहीं आता। अति यथार्थवाद के नाम पर उपजी निराशा, घुटन, संत्रास, नग्नता और फूहड़पन लेखन का हिस्सा हो सकते हैं परन्तु साहित्य से तो उनको खारिज ही किया जाना चाहिये क्योंकि ये मानसिक रूग्णता है। तो औषधि क्या है! साहित्य जिसका अर्थ ही है- हित-सहित, ऐसा विकृत लेखन किस हित का साधक है यह तो साहित्यसेवी समझें परन्तु इसका परिणाम भयावह ही होना है। इसके अतिरिक्त मीडिया में हिन्दी साहित्य की जो स्थिति है, प्रख्यात कथाकार

तथा "हंस" पत्रिका के सम्पादक राजेन्द्र यादव ने एक संगोष्ठी में मीडिया में साहित्य के लिये खत्म होती जगह पर बोलते हुये कहा था, "साहित्य और मीडिया दो ऐसे पड़ोसी देश की तरह हैं जो हमेशा एक दूसरे से लड़ते रहते हैं। इनकी दुश्मनी पुरानी है, फिर भी साहित्य को मीडिया की जरूरत है।"

वरिष्ठ टी.वी. पत्रकार रवीश कुमार ने कहा कि, "टी.वी. सहित तमाम नये मीडिया माध्यमों की फुर्ती के आगे साहित्यकार सुस्त पड़ जाते हैं, इसलिये उन्हें कोई नहीं पूछता।" आगे वे कहते हैं कि, "साहित्यकारों को मीडिया के साथ सहज होने के लिये अपनी सुस्ती तोड़नी होगी, क्योंकि वे औरों से कहीं बेहतर राष्ट्रीय प्रवक्ता हो सकते हैं।

वास्तव में साहित्य पर बाजारवाद हावी नहीं होना चाहिये बल्कि बाजार में साहित्य उपस्थित रहे और अपनी गरिमा और महत्व को स्थापित करता हुआ हिन्दी साहित्य को विश्व में गौरव दिलाये। आइये हम सब मिलकर इस महनीय कार्य में योगदान दें।

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9,47-50**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 09 दिसम्बर 2014

# महिला सशक्तिकरण : एक विमर्श

डॉ. अंशुमाला मिश्रा*

*लेखक का घोषणा-पत्र*

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ *महिला सशक्तिकरण : एक विमर्श* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अंशुमाला मिश्रा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

नारी भारतीय समाज का एक ऐसा घटक है जिसकी स्थिति एवं क्रियाकलाप समय के साथ ही परिवर्तन होते रहे हैं। कभी भारतीय समाज ने नारी को समानता का स्तर प्रदान किया तो कभी श्रद्धा का केन्द्र बिन्दु बनाया, कभी सम्मान का प्रतीक बनाया, कभी पतन का कारण समझा, कभी नर्क का द्वार बताया और कभी भोग की वस्तु समझा। इस प्रकार सम्पूर्ण भारतीय समाज में नारी की स्थिति अत्यन्त दुविधापूर्ण रही।

कालान्तर में एक सुखद एवं सुरक्षात्मक एहसास के साथ मानव ने अपने को स्थापित किया। सर्वप्रथम स्त्री ने मर्यादापूर्वक रहकर मर्यादायुक्त जीवन की प्रेरणा दी। हमारे सामाजिक जीवन की प्रक्रिया का प्रारम्भ ही नारी के त्याग, तपस्या, सहिष्णुता, कोमलता एवं सहृदयता से हुआ है, लेकिन यह विडम्बना ही है कि विद्या, विभूति और शक्ति के रुप में क्रमशः सरस्वती, लक्ष्मी एवं दुर्गा के रूप में सर्वत्र पूजित नारी को अपने घर-समाज में विभिन्न प्रकार के यातनाओं एवं उत्पीड़न का सामना करना पड़ रहा है।

भारतीय समाज में गृहस्थी का भार इन महिलाओं पर होता है। न अधिकारों का ज्ञान, न जागरुकता, पुरुषों की तुलना में मजदूरी कम तथा कई तरह के मानसिक व शारीरिक शोषण को वहन करना पड़ता है। भारत ही नहीं पूरे विश्व में आज असमानता पायी जाती है। यूरोपीय सर्वे रिपोर्ट के अनुसार सत्ताईस यूरोपीय देशों में पुरुषों के मुकाबले महिलाओं को पन्द्रह प्रतिशत कम वेतन मिलता है जबकि निजी क्षेत्र की नौकरियों का अन्तर पच्चीस प्रतिशत तक है। भारतीय महिलाओं की अर्थ-व्यवस्था में भागीदारी में कुल श्रम शक्ति में से 12.7 प्रतिशत वेतन पाने वाली महिलायें हैं। 68 प्रतिशत कुल महिला श्रम-शक्ति का 35 प्रतिशत कृषि मजदूर हैं। 17 प्रतिशत साधारण मजदूर हैं और सिर्फ 5.2 प्रतिशत नौकरी-पेशा हैं। महिला श्रम-शक्ति में 55.73 प्रतिशत सलाना आय एक लाख रूपये से अधिक व 16.28 प्रतिशत महिलाओं की आय 25000 से भी कम है।

महिलाओं के पिछड़े होने के कारणों में मुख्य रुप से सामाजिक, सांस्कृतिक व मनोवैज्ञानिक कारण आते हैं, क्योंकि किसी भी ठोस कदम के लिये आर्थिक सुदृढ़ता भाव सामने आता है। सामाजिक सांस्कृतिक कारणों

* वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, जगत तारन गर्ल्स डिग्री कॉलेज [इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सम्बद्ध] इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत



© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

में महिलाओं का निम्नस्तर, प्रत्येक स्तर पर पुरुष को वरीयता, अशिक्षा, अज्ञानता, सम्पत्ति हीनता, अधिकार हीनता, स्त्रियों को घर की चहारदीवारी में सीमित रखना, विभिन्न सामाजिक बंधनों, नियंत्रणों तथा रीतिरिवाजों का प्रचलन होना, अधिक कार्यभार एवं समयाभाव, निरर्थक धार्मिक परम्परायें आदि अड़चने पैदा करती हैं।

..लेकिन जब हम अपने अतीत पर दृष्टि डालते हैं तो पाते हैं कि भारत में गार्गी, मैत्रेयी जैसी विदुषी महिला दार्शनिक थीं जो पुरुषों के बराबर ही सम-भाषण प्रवचन तथा बहस मुबाहिशों में भाग लेती थीं। यही नहीं स्वाधीनता आन्दोलन में भी महिलाओं का योगदान पुरुषों से कम नहीं था, वह भी उस समय जब मात्र दो प्रतिशत महिलायें ही शिक्षित थीं। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि महिलाओं के लिये घर से बाहर निकलना कितना कठिन था, परन्तु तब भी वे बाहर निकलीं। आजादी के बाद भी संविधान सभा के सदस्य के रूप में महिलाओं ने स्वतंत्र भारत के लिये संविधान का मसौदा तैयार करने के काम में हिस्सा लिया। यह गर्वानुभूति है कि डॉ. भीमराव अम्बेडकर के प्रस्ताव पर संविधान ने प्रारम्भ से ही महिलाओं को वोट देने का अधिकार दिया, जिससे ऐसी व्यवस्था वाले चुनिन्दा देशों की श्रेणी में भारत भी शामिल हो गया। हमें यह विस्मृत नहीं करना चाहिये कि सत्तर वर्ष तक अमेरिका की स्त्रियों ने वोट देने का अधिकार पाने के लिये संघर्ष किया। यूरोप में जॉन स्टुअर्ट मिल पहले दार्शनिक थे जिन्होंने स्त्रियों के मताधिकार, शिक्षा और रोजगार के प्रश्नों पर उन्हें बराबरी का दर्जा दिलाने की बात कही। हमारे यहाँ बीसवीं सदी के दो दशकों ने स्त्रियों सम्बन्धित प्रश्नों को बहुत आकुलता से छुआ है।

पिछले 15-16 वर्षों से भारत में महिला सशक्तिकरण का नया दौर शुरु हुआ है। एक तरफ जहाँ लोकसभा और विधान सभाओं के लिये 33 प्रतिशत आरक्षण का मसला बारह-तेरह वर्षों से लम्बित पड़ा है, वहीं दूसरी तरफ पंचायतों में महिलाओं के लिये 33 प्रतिशत आरक्षण लागू होने से जमीनी स्तर पर काफी बदलाव हुये हैं और एक नयी राजनीतिक संस्कृति भी विकसित हुई है। आज भारत में 12 लाख से अधिक महिला निर्वाचित प्रतिनिधि हैं जो दुनिया के किसी भी देश में नहीं है। यदि पूरी दुनिया के निर्वाचित महिला प्रतिनिधयों की संख्या जोड़ दी जाये तो वह संख्या इन निर्वाचित महिला प्रतिनिधि से कम है। पंचायत स्तर पर इतनी बड़ी संख्या में महिलाओं की भागीदारी ने स्थानीय स्तर पर सामुदायिक जीवन और उसकी चेतना तथा संस्कृति में भी परिवर्तन लाया है।

महिला सशक्तिकरण की बात उठते ही यह चिन्तन आरम्भ होती है कि क्या वास्तव में महिलायें कमजोर हैं जो उनके सशक्तिकरण की आवश्यकता है। प्रकृति ने तो महिलाओं को शारीरिक रूप में पुरुषों की तुलना में ज्यादा प्रतिरोधक क्षमता प्रदान करके सृष्टि को जन्म देने जैसे मजबूत कार्य सौंप रखा है। परन्तु आज वैश्वीकरण के इस युग में परिस्थितियाँ अधिक बदल चुकी हैं। स्त्रियों ने अनेक मौकों पर अपनी शक्ति सम्पन्नता का अहसास कराया है। आज का समाज यह समझ चुका है कि विकास के कार्य में स्त्री की सहभागिता के बिना वांछित लाभ प्राप्त करना अत्यन्त ही कठिन है।

महिला सशक्तिकरण का तात्पर्य है, सामाजिक सुविधाओं की उपलब्धता, राजनैतिक और आर्थिक नीति निर्धारण में भागरीदारी, समान कार्य के लिये समान वेतन, कानून की तहत् सुरक्षा एवं प्रजनन अधिकारों आदि को इसमें सम्मिलित किया जाता है। सशक्तिकरण का अर्थ किसी कार्य को करने या रोकने की क्षमता से है, जिसमें महिलाओं को जगरुक करके उन्हें आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षिक और स्वास्थ्य सम्बन्धित साधनों को उपलब्ध कराया जाये, ताकि उनके लिये सामाजिक न्याय और पुरुष महिला समानता का लक्ष्य हासिल हो सके।

जीवन के हर क्षेत्र में महिलाओं के योगदान को स्वीकार किया गया है, क्योंकि महिला एवं पुरुष विकास रूपी गाड़ी के दो पहिये हैं। महिलायें राष्ट्र के विकास में उतना ही योगदान रखती हैं, जितना पुरुष। अत: देश का समग्र विकास महिलाओं की भागीदारी के बगैर सम्भव नहीं है।

आजादी के छः दशक गुजर जाने के बाद भी आज परिवार में शिक्षा की दृष्टि से लड़की को निरक्षर रखने या लड़कों की तुलना में साधारण सी शिक्षा देने की औपचारिकता है। राष्ट्रीय फैमिली हेल्थ सर्वे की रिपोर्ट में यह तथ्य उजागर हुआ कि उत्तर प्रदेश में 54 प्रतिशत बालिकाओं ने स्कूल का मुँह नहीं देखा है, वह यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त हैं कि राज्य में मात्र 8 प्रतिशत बालिकायें ही दस वर्ष या इससे अधिक शिक्षा प्राप्त करती हैं।

राजनीति, व्यापार और अन्य सार्वजनिक गतिविधियों में पुरुषों की तुलना मे उसे पीछे रखने का और पुरुष की तुलना में बराबरी का हक मागने पर शारीरिक और मानसिक यातना देने का क्रम अभी भी जारी है। वस्तुतः इस पुरुष प्रधान भारतीय समाज में नारी एक दोयम दर्जे की नागरिक बनी हुई है। वह घर और बाहर संस्कृति की पोषिका, अर्थ-व्यवस्था की धुरी और नीति आधारित राजनीति की संरक्षिका बनने की सामर्थ्य रखने के बावजूद समाज में उचित स्थान नहीं प्राप्त कर सकी है।

महिलाओं को संवैधानिक एवं कानूनी रूप से सशक्त बनाने हेतु स्वतंत्र भारत के संविधान में स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार देने का प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 9, 15 और 16 [मौलिक अधिकार] तथा अनुच्छेद 38 एवं 39 [राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्त] के द्वारा स्त्री और पुरुष के मध्य केवल लैंगिक भेदभाव करने का निषेध किया गया है। अनुच्छेद 39 घ पुरुषों और स्त्रियों दोनों को समान कार्य के लिये समान वेतन का प्रावधान करता है। नारी सशक्तिकरण में निम्न संवैधानिक प्राविधान की प्रभावपूर्ण भूमिका निभा रहे है:

1. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम [संशोधन विधेयक] 1929
2. हिन्दू महिलाओं के सम्पत्ति के अधिकार का अधिनियम 1937
3. बागान श्रम अधिनियम 1951
4. ख़ान अधिनियम 1952
5. हिन्दू विवाह अधिनियम 1955
6. दहेज प्रतिबन्ध अधिनियम 1961/ 1986
7. प्रसूति सुविधा अधिनियम 1969
8. ठेका श्रम अधिनियम 1970
9. समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976
10. बाल विवाह निषेध अधिनियम 1976
11. स्त्री अशिष्ट निरुपण अधिनियम 1986
12. सती निषेध अधिनियम 1987
13. प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम 1994
14. महिला तलाक [संशोधन] अधिनियम 2001
15. महिलाओं पर घरेलू हिंसा अधिनियम 2001
16. परित्यक्ताओं के लिये गुजारी भत्ता [संशोधन] 2001
17. बालिका अनिवार्य शिक्षा एवं कल्याण विधेयक 2001

महिला सशक्तिकरण का प्रश्न समाज के स्थायी एवं संतुलित विकास का प्रश्न है और यह पुरुषों तथा महिला सभी की सहभागिता एवं सार्थक अनुपूरकता से ही सम्भव है। भारतीय समाज को अपने परम्परागत, रूढ़िगत, सामन्ती सोच से बाहर निकलकर समता आधारित स्त्री-पुरुषों के आपसी सम्बन्धों को कारगर ढंग से बढ़ाने से होगा। संसद से लेकर पंचायत तक स्त्रियों की सहभागिता के लिये किये गये प्रयत्नों के साथ-साथ इस सहभागिता को प्रभावी बनाने के लिये प्रयत्न करने होंगे। विश्व के विकसित समाजों की तरह भारतीय समाज में स्त्रियों को अधिक स्वतंत्रता, समानता और सम्मान देना होगा। दूसरी ओर स्त्रियों को भी स्वयं अपने जीवन की चुनौतियों को स्वीकार कर उसमें बदलाव लाने के लिये स्वयं संघर्ष करते हुये पुरुष के साथ अपनी सहभागिता बढ़ानी होगी।

गांधी जी नारी को अबला नहीं मानते थे। उनके विचार से स्त्री को अबला कहना उसका अपमान है। गांधीजी कहते थे, "यदि शक्ति का अर्थ नैतिक शक्ति से है तो नारी निश्चित रुप से पुरुष की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ है। यदि अहिंसा मानव जाति का विषय है तो भविष्य में नारी जाति के हाथ में है। स्त्री में पुरुष की अपेक्षा आत्मत्याग, अधिक सहिष्णुता, अधिक साहस है। यदि पुरुष अपने अविवेकपूर्ण स्वार्थ के वशीभूत होकर स्त्री की आत्मा को कुचला न गया होता और यदि नारी *काममूलक आनन्दोपयोग* की शिकार न बन गयी होती तो उसने संसार को अपनी अन्तर्निहित अनन्त शक्ति का परिचय दे दिया होता। जब नारी को पुरुष के समान अवसर फिर से प्राप्त हो जायेंगे तथा वह परस्पर सहयोग और सम्बन्ध की शक्तियों का पूरा-पूरा विकास कर लेगी तो संसार एक बार फिर स्त्री शक्ति का उसकी सम्पूर्ण विलक्षणता और गौरव के साथ परिचय पा सकेगा।"

महात्मा गांधी का मानना था कि जैसे दूसरे की तपस्या से हम स्वर्ग नहीं जा सकते, वैसे ही पुरुषों के द्वारा स्त्री-जाति की उन्नति नहीं की जा सकती। उनका आशय यह नहीं है कि पुरुष नारियों की उन्नति के इच्छुक नहीं हैं अथवा स्त्रियाँ पुरुषों की सहायता से उन्नति न करें। वरन् वह नारियों के समक्ष यह सिद्धान्त प्रस्तुत करना चाहते हैं कि कोई भी व्यक्ति या जाति अपनी शक्ति से ही उन्नति कर सकती है। गांधीजी कहते हैं कि, "नारियों की सेवा कार्य में जब तक नारियाँ न आये, तब तक इस कार्य को नहीं चलाया जा सकता।"

गांधी जी नारी के तेज का हमेशा उत्कर्ष चाहते थे। तेज के उलब का अर्थ है- शील, संयम एवं धर्म बोध का उत्कर्ष। आत्मज्ञान, लोकज्ञान, परम्परा ज्ञान, स्वधर्म ज्ञान, परधर्म क्या है ? अधर्म क्या है ? पाप क्या है ? असत्य किन रूपों में छाया है ? पाप किन रूपों में बढ़ रहा है ? इन सबका ज्ञान बहुत आवश्यक है। गांधी जी चाहते थे परिवार और समाज में धर्म, तेज और उत्थान के लिये स्त्री-पुरुष मिलकर प्रयास करें।

वर्तमान समय में नारियों ने ऐसा कोई क्षेत्र नहीं छोड़ा, जहाँ उन्होंने अपनी सूझ-बूझ, कौशल, हिम्मत द्वारा सभी चुनौतियों का सामना कर पुरुषों की तरह अपना स्थान न बनाया हो। आज भारतीय नारी में अभूतपूर्व जागरण का दर्शन हो रहा है।

## स्रोत

डॉ. अजीत रायजादा -महिला उत्पीड़न-समस्या एवं समाधान, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी 2000
अनिता पटेल -महिला उत्पीड़न का सिलसिला कब तक, योजना; दिसम्बर 2002
गुलाब सिंह आजाद -महिला विकास और सहकारिता, कुरुक्षेत्र 1996, पृष्ठ संख्या 06
वही, पृष्ठ संख्या 07
*महिला सशक्तिकरण एवं मानवाधिकार हरिणी रानी ए जर्नल ऑफ एशिया फॉर डेमोक्रेसी एण्ड डेवलपमेंट*
योजना; अक्टूबर 2008
कुरुक्षेत्र; मार्च 2007
कुरुक्षेत्र -ग्रामीण विकास को समर्पित, नवम्बर 2008
कुरुक्षेत्र -ग्रामीण विकास को समर्पित, मार्च 2008
दैनिक जागरण; वाराणसी संस्करण, 3 नवम्बर 2008
योजना; अगस्त 2001
दैनिक जागरण; समाचार पत्र, 13 अक्टूबर 2008
आहूजा, राम -भारतीय समाज, रावत पब्लिकेशन जयपुर
सम्पूर्ण गांधी वांगमय, भाग-3, पृष्ठ संख्या 226-27
वही, भाग-4, पृष्ठ संख्या 191

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,51-57
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 10 दिसम्बर 2014

# सुनीता जैन की कविता में चित्रित स्त्री

डॉ. राधा वर्मा*

*लेखक का घोषणा-पत्र*

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *सुनीता जैन की कविता में चित्रित स्त्री* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *राधा वर्मा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

'राग और आग' की कविताओं में से गुजरने के बाद कहा जा सकता है कि- घर हो या बाहर-स्त्री हर जगह शोषण का दंश झेल रही है। सुनीता जैन ने एक ओर जहां घर से बाहर समाज के नकारात्मक विचारों, दलालची, अफसरों और अन्य सह-कर्मियों के यौन-शोषण की शिकार होती अपनी अस्मिता बचाती स्त्री को चित्रित किया है, तो वहीं दूसरी ओर घर में दादा द्वारा बलात्कार की शिकार होती पोती, व्यभिचारी और नकारा पति के जुल्म सहती पत्नी, माँ-बाप की लिंग भेद की राजनीति से उदास औरत में तबदील होती लड़की को चित्रित किया है। उस की दयनीय दशा को देखकर कवयित्री ने पाठक को उसके प्रति जहां अच्छे व्यवहार करने को प्रेरित किया है वहां उस स्त्री शक्ति से भी परिचित करवाया है।

स्त्री को वस्तु बनाते समाज को सुनीता जैन की 'वह नाराज़ है', 'की बोर्ड-3', 'पहली कमाई स्त्री की', 'कलमजली', 'तरुणी' कविताओं में देखा जा सकता है। 'वह नाराज़ है' कविता की ये पंक्तियाँ इस का प्रमाण है :

वह पढ़ती है ख़बर/ गर्भवती स्त्री की हत्या के बारे में/ जो बचा रही थी अपनी अस्मिता/ और बचाना चाह रही थी/ गुण्डों के हाथों पीटा जाता/ अपना पति, मोदीनगर की सड़कों पे।[1]

यही नहीं, अपनों के द्वारा ही बच्ची का बलात्कार दिल को दहलाने वाली घटना को सुनती है, 'वह सुनती है, चार बरस की बच्ची का/ बलात्कार अपने ही रिश्ते के दादा द्वारा/ दिल्ली में।'[2]

दफ्तर में भी यौन-शोषण का यह क्रम जारी रहता है :

उसको बतलाती है उसकी सहेलियाँ/ दफ़्तर में अफ़सर की हरकतें/ कैसे-कैसे फुसलाता है वह/ और अन्य सहकर्मी भी/ इधर-उधर मिलने को होटल में/ धमकी देते हैं दबी-दबी/ न तो निकाल दिये जाने की/ वह सुनती है/ मन ही मन अपना सिर धुनती है।[3]

दुःखी होती स्त्री, शोषण की मार झेलती, सोच-विचार कर कहती है, 'वह क्या करे कि स्त्री में/ बची रहे स्त्री/ वह नाराज़ है/ स्त्री के स्त्री होने से/ नहीं, स्त्री के वस्तु होने से।'[4]

* सहायक आचार्य, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय शिमला (हिमाचल प्रदेश) भारत। (आजीवन सदस्य)



© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

किस तरह घर से बाहर एक-स्त्री का शोषण करने को लोग तैयार हैं इसे 'की बोर्ड-3' कविता में देख सकते हैं :

स्त्री घर से बाहर निकली/ कोई लाया लटके चुन-चुन के/ कोई उपहार/ किसी ने दिये लालच तरक्की के/ किसी ने मोटी-मोटी धमकी/ वह बचती रही जैसे-तैसे/ गड्ढों में गिरती रही कैसे-कैसे/ पाठक, बोलो वह क्या करती/ संस्कारों की मारी/ धरी रह गई खुद्दारी/ दलदल में ओछी इस देह की।[5]

घर से बाहर ही नहीं, घर में भी उसका शोषण ही होता है। चाहे वह दिन भर कमाई क्यों न करे। 'पहली कमाई स्त्री की' कविता मेहनतकश स्त्री के बारे में बताती है, जो अपनी पहली कमाई से खुश थी। मेहनतकश स्त्री अपनी पहली कमाई से कितनी खुश थी, भले ही काम के समय डरी हुई थी। उस स्त्री को चित्रित करती ये पंक्तियाँ देखिये :

बड़ी मुश्किल से वह काम पे लगी-/ महीना भर कमर तोड़ी/ भादो के घटाटोप में/ टप टप तन से टपकी/ मालकिन की भृकुटी से रही डरी/ फिर भी वह खुश थी/ पल्ले में बंधे थे 1400 रुपये/ पहली कमाई उसकी।[6]

वह कितनी मेहनतकश है, परंतु कमाने के पश्चात् भी वह आर्थिक रूप से सक्षम नहीं दिखती। ये पंक्तियाँ इस का प्रमाण है :

लेकिन पति बैठा था ताक में पहले से ही/ बोला, 'तनख्वाह मिली ?'/ उसने बढ़ा दी सारी/ 'हूँ' वह गिनता रहा एक-एक कर/ फिर एक हजार रखे खाट पर/ ये ले खर्च के पैसे।[7]

ऐसा करने पर भले ही वह आपत्ति जताती है, परंतु उस के उपर कोई असर नहीं पड़ता बल्कि उसे ही गाली-गलौज सुनना पड़ता है। खर्च के पैसे उसकी तनख्वाह में से देने पर वह विरोध करते हुए कहती है :

पर वह तो तुम देते थे ?/ अब से तू देगी/ क्यों ?/ दूँगा एक झापड़! क्यों-क्यों करती है साली/ बाहर जाने देता हूँ, यह क्या कम है/ जाने किस किस से मस्खरी करती होगी/ पति ने ठूंसे चार सौ कमीज़ की जेब में/ और आँख तरेरी।[8]

पूरे महीने काम करने पर जो पैसे मिले, जिन्हें देखकर वह अत्यन्त प्रसन्न नज़र आती है, उसके नसीब में उस में से एक भी पैसा नहीं है। उस पर पति कब्जा कर लेता है। उसकी मेहनत की कमाई को कुछ तो अपने जेब खर्च के लिए रखता है और बाकि घर के खर्च चलाने के लिए देता है। वह खाली की खाली रहती है और आर्थिक तथा मानसिक रूप से कमज़ोर भी। अकेली, युवा, अविवाहिता, स्वावलम्बी स्त्री के जीवन को चित्रित करते उसके बारे में समाज के नकारात्मक विचारों से 'कथा' कविता में बताते हुए सुनीता जैन कहती है :

सम्भ्रान्त पुरुष अक्सर/ उस के निकट नहीं जाते/ उनकी पत्नियों को दिखती है/ वह एक बड़े खतरे सी/ चोर उच्चके ? लम्पट लोभी ? उन की तो न पूछो उनकी कमी नहीं।[9]

दलालची की शिकार युवा मूर्ख और लड़की का चित्रण 'कलमजली' कविता में मिलता है :

वह कहीं की हो सकती है/ किसी पिछड़ी गली/ किसी कमज़ोर बस्ती/ किसी सीमान्त नगर की/ वह लाई जा सकती है दिल्ली/ पुरस्कार के काँटे पर मच्छली सी लटकी/ काढ़ेगे उसके कसीदे सारे के सारे/ दलालची/ मूर्ख युवा और निर्धन लड़की/ कब तक लेती रह सकती है इतना कुछ/ लेकर वह कुछ तो/ देगी ही न आखिरकार ? देती है। देती/ देती है, कलमजली।[10]

बच्चों को पालती अकेले रहने को मजबूर स्त्री को 'तरुणी' कविता में देखा जा सकता है। पति उसे छोड़ विदेश में क्या-क्या करता है, इससे रू-ब-रू करवाती सुनीता जैन कहती है :

ज़्यादातर/ अपनी नई बीबी और बच्चों संग/ होता व्यस्त किसी चाल में/ रहता है 'काली' संग अमरीका में/ वीसा की खातिर-/ ब्याहता है वृद्धा को, इंग्लैण्ड में/ बसने की खातिर/ जर्मन मालकिन की सेवा करता/ जेल से बचने की खातिर -/ दिन में बर्तन/ रात में बिस्तर माँजता आदमी।[11]

अपने विदेश गये पति को कहाँ और कैसे खोजे, वह इसके बारे में नहीं जानती। इससे अवगत करवाते कवयित्री कहती है, 'तरुणी नहीं जानती कहाँ खोजे उसे-/ नहीं बैठी वह कभी जहाज में/ नहीं जानती टिकट/ या विदेसिया के बारे में।'[12]

घर का गुजारा बड़ी मुश्किल से करती है, 'कभी-कभार आये पैसे से/ वह पोसती है बेटा/ जिसकी रगबत कुछ ठीक नहीं/ और पोसती है दो/ छोटी-बड़ी लड़कियाँ अपनी।'[13]

पति के बगैर अकेले रहती तरुणी परेशान दिखाई देती है। उस की परेशानी जायज है। बड़ी हो रही लड़कियों को देख वह चिंतित हो रही है :

कल घर के बाहर दिखे/ कुछ गैर किस्म के आदमी/ ऐसे ही आये थे परसाल भी/ मिली नहीं फिर धनिया की राधा/ न होरी काका की लिछमी/ कहाँ छुपा आए, तरुणी/ ताड़ सी उम्र चढ़ रही गौरा अपनी ?[14]

तरुणी कितनी दुःखी है इसका अंदाजा इन पंक्तियों से लग जाता है जहाँ वह यह कहती नज़र आती है :

राम जी, अगले जन्म हमें/ पेड़ बना दीजो/ कीट पतंग आ ढ़ोर बना दीजो। चिड़िया, दादुर, मोर बना दीजो। पर अबला का फिर साप न दीजो' संखिया की टोह में, रो रही तरुणी।[15]

बेटी की शादी न होने पर माँ की हालत तथा कन्या भ्रूण हत्या के कारण से 'नमक जीभ पे' कविता में रू-ब-रू करवाया है। बेटी की शादी न होने पर माँ किस तरह टूट जाती है, इन पंक्तियों में इसे देख सकते हैं :

मेरे घर की सेविका, सुसीला/ गयी थी दो महीने पहले/ किसी बिहार के गाँव में/ लड़की की शादी करने/ संग थे पच्चास हजार रुपये/ गाढ़ी कमाई के/ लौटी है कल मुँह सूखा ले/ सख्त छुआरे सा/ आँख धँसी है पर बहती/ लगातार पल्ले से नाक दबाती।[16]

रिश्ता न होने का कारण था, लड़की का दिल्ली में पलना और फैक्टरी में काम करना। इन पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है :

लड़की दिल्ली की पली/ क्या पता कैसी हो बेहया, गाँव के बोले/ पूछा क्या करती हो ? बेटी से भी, उसने बतलाया, 'फैक्टरी में काम'/ तो क्या बाप तुम्हारा/ रहता हरदम साथ तुम्हारे ? दुत्कारा सभी जनों ने।'[17]

अपने पाँव पर खड़ी यानी आत्मनिर्भर लड़की की शादी की बात के समय उसे किस तरह संदेह भरी दृष्टि से देखा जाता है। यह पंक्तियाँ इसकी गवाह है। लड़का फैक्टरी में काम करे तो उसकी शादी की बात के समय ऐसा प्रश्न कोई नहीं करता, परंतु लड़की से जरूर किया जाता है। इसी वजह से हताश हो कर लोग आखिर कन्या भ्रूण हत्या करने को मजबूर होते हैं :

रोई फिर वह ज़ोर-ज़ोर से/ पाँच-पाँच बेटी हुई/ पर मारा नहीं मैंने/ छुपा-छुपा कर पाला घरवालों से/ देने नहीं दिया नमक जीभ पे/ आज समझ आया पर मुझ को/ मार दिया करते क्यों बेटी/ पैदा होते ही घर में बड़ले।[18]

इसी वजह से आज लिंग भेद व्याप्त है। लिंग भेद की राजनीति का सशक्त प्रमाण हैं 'ए लड़की', 'दोनाली', 'घर बिका है', 'रात', 'लड़कियां बदलती है' कविताएं। समाज में लड़के और लड़कियों के लिए दोहरे मापदंड निर्धारित किये जाते हैं। 'ए लड़की' कविता की इन पंक्तियों से यह स्पष्ट हो जाता है :

बाहर लड़के खेल रहे हैं हॉकी/ 'कितना चिल्लाते हैं वे, माँ' लड़की बोली/ माँ हँस दी/ चिल्लाने से बेटे की/ चौड़ी होगी छाती/ लेकिन लड़की/ ढकी रहे बस सिमटी-सिकुड़ी/ जैसे-जैसे कद उठे लड़की का/ आवाज़ दबे होकर के धीमी।[19]

माँ को बड़ा होता बेटा तो अच्छा लगता है, पर लड़की नहीं। बड़ी होने पर माँ की चिंता बढ़ जाती है। बेटियों के लिए कायदे कानून भी माँ द्वारा ही निर्धारित किये जाते हैं कि उसे क्या करना है, कैसे रहना है आदि। सुनीता जैन का यह कहना गलत नहीं है, 'इसीलिए, 'ए लड़की'/ तेरे सब कानून कायदे/ संविधान लिख पायी नहीं/ उनको लिखती तुम्हें जन्म कर/ केवल तेरी माँ ही।'[20]

'लड़की' कविता भी लिंग भेद को सामने लाती है। अधिकांश जगह पर आज भी लड़की के दुनिया में कदम रखते ही घर का माहौल गमगीन नज़र आता है, 'लड़की जनमी जब कभी/ हो गए सब कंगाल/ थाली आंगन न बजी/ बँटा न लड्डू थाल।'[21]

खाने में भी भेदभाव साफ नज़र आता है। माँ द्वारा बेटा और बेटी दोनों के साथ किये जा रहे व्यवहार में कितना अंतर है, 'भाई को माँ दे रही/ खाना नित पुचकार/ लड़की जितना खा रही/ उतनी ही फटकार।'[22]

लड़की को गृहस्थी के काम और बंधन में बाँधा जाता है, अशिक्षित रखा जाता है और लड़के को अंग्रेजी शिक्षा से शिक्षित किया जाता है, 'भैय्या इंग्लिश सीख ले/ लड़की कपड़े फींच/ घर से बाहर जाए तो, सिर पर पल्ला खींच।'[23]

लड़की पढ़ने-लिखने की उम्र में ससुराल भेज दी जाती है, क्योंकि उस घर में उस का अब कोई काम नहीं, जबकि लड़के को कॉलेज भेजा जाता है :

भैय्या कॉलेज जा अभी, लड़की जा ससुराल/ बन्ने संग अब आइयो, छटे छमाहे साल/ लड़की तेरा बाप घर, काम नहीं अब और/ हम डोली उठवा रहे, लकड़ी तक उस ठौर।[24]

जिस बेटे को सब कुछ बेटी से बढ़कर किया गया हो, उसके विदेश जाने पर, अपने उन माँ-बाप को न देखना, जिन्होंने उसे विदेश जाने लायक बनाया, कितना कष्टकारक है। इन पंक्तियों में इस दर्द को देखा जा सकता है :

बेटा गया विदेस को, बीते बारह साल/ खाट पकड़ ली बाप ने, माँ ने पूछो हाल/ बेटा आया चला गया, काम पड़े थे बीस/ खाली घर माँ रो रही, हाथ पे रखे सीस।[25]

बुरे वक़्त में भी माँ की देखभाल करती, लिंग भेद की शिकार बेटी को इन पंक्तियों में देख सकते हैं :

लड़की तब से कर रही, माँ की देख-सँभाल/ लेकिन माँ न पूछती, कैसी तू ससुराल/ लड़की माँ को न दिखे, खड़ी हुई भी पास/ 'बेटा-बेटा' कर रही, छूट चली जब साँस।[26]

बाप की उपेक्षा की शिकार बेटी के उद्गार 'दोनाली' कविता प्रस्तुत करती है। बेटी के उद्गार देखिये :

जानो वे कैसी होती होंगी/ जिनके बाबू जी/ खेला करते हैं संग अपनी बेटी के/ जिनको बेटी कहती है/ पापा पापा, डैडी, डैडी/ चलती है संग उँगली पकड़े/ ज़िद्द करती है/ मेले में जाने की/ कुछ खाने की/ मैं तो बस बड़ी हो गई। डर के मारे।[27]

उसका बचपन भी ज्यादा समय के लिए नहीं था। वह स्वीकारती है, 'दो चोटी में बाल सँवारे/ मेरे वे दिन थोड़े से/ फूलों और चिड़िया वाले/ जाने किस दोनाली ने/ धुआँकर दिये सारे।'[28]

पुश्तैनी घर बिकने पर यानी जड़ों को खत्म करने पर जहाँ बेटियों को निराशा हाथ लगती है, वहीं बेटे माला-माल होते हैं। लिंग भेद के कारण ही ऐसा होता है। 'घर बिका है' कविता इस का प्रमाण है, ये पंक्तियाँ देखिये :

कहने को तो घर बिका है/ घर नहीं आँगन बिका है, जिसमें/ शन्नों की गुड़ियाँ सोती थीं/ वह पिछवाड़ा बिका है जिसमें बड़अम्मा की खाट बिछा करती थी/ वह बराम्दा बिका है/ जिसकी बड़ी मेज पे/ माँ सब्जियाँ बिनारती थी/ वह बूढ़ा आम बिका है/ जिसके नीचे बुआ ने पींग भरी थीं/.....वह घुड़साल बिका है/ जिस में दो-दो गैय्या रहती थीं/ वह गोल चबूतरा बिका है/ जिसमें बाबू जी की शाम कटा करती थी/ वे टाँडें, टाँडे में संदूक बिके हैं/ जिनमें गुदड़ी से लेकर यादों की/ पाजेब रखीं रहती थीं।[29]

दुःखी बेटी के ये उद्गार हृदय में कसक पैदा करते हैं। कसक पैदा होना स्वाभाविक ही है। बेटी हमेशा मायके की यादों से अपने को जुदा नहीं कर पाती। मायके के बिकने पर उसका दुःख बढ़ जाता है, 'बेटों को कल/ नोटों का अम्बार मिला है/ बेटी का नैहर, मैका/ बाबूला देश बिका है।'[30]

माँ के हाथों प्रताड़ित होती, लिंग भेद की शिकार होती लड़की से 'रात' कविता में रू-ब-रू करवाया है। ये पंक्तियाँ इसका प्रमाण है, 'लड़की चीखी/ माँ के हाथ/ चिमटा/ मुँह में फिर/ गाली थी/ 'तू/ मर जा'/ मरने के सिलसिले में/ मरती है/ सिलसिलेवार/ लड़की।'[31]

उदास औरत में तब्दील होती लड़की को 'लड़कियाँ बदलती हैं' कविता में देख सकते हैं। ये पंक्तियाँ इससे अवगत करवाती हैं :

वृक्ष कहता नहीं कुछ/ सड़क से ज्यों/ पक्षी कहते नहीं/ वृक्ष से कभी ज्यों/ सूरज आकाश में/ चुपचाप सा ज्यों/ वर्षा धरती पर/ गुमसुम बरसती ज्यों/ लड़कियाँ बदलती हैं/ उदास औरत में/ बिना कुछ कहे/ बिना कुछ लिखे।[32]

अपने घर में भी उनका कोई महत्त्व नहीं होता। उनकी हालत को चित्रित करती ये पंक्तियाँ इस का उदाहरण है :

हँसती हैं औरों के कहकहें में/ बजती है औरों की ताली में/ गुम होती है भीड़भाड़ में/ और एक दिन/ रह जाती है पीछे/ पूछती है स्वयं से, 'कौन हूँ मैं'/ अपने ही घर में पूछती है अपना पता।[33]

माँ द्वारा खेलने-कूदने की उम्र में ही उसे घर की जिम्मेदारी सौंप दी जाती है। उससे उस का बचपन छीना जाता है :

गिट्टे खेलती लड़की से/ छीन लेती है गिट्टे माँ/ और एक दिन! कूदने की रस्सी भी/ छीन लेती है माँ/ गुड्डा गुड़िया/ दे देती है झाड़ू/ और कड़छी/ दोपहर में/ झूठे बर्तन/ और रात को/ रोता भाई या नई बहन।[34]

यही नहीं, पढ़ना भी उस के नसीब में नहीं है। बस्ते और तख्ती को/ खड़ी तरसती/ लड़की सुनती है/ मिशन स्कूल की घंटी/ और गाने लगती है/ फिल्मी धुन अटपटी/ झूठ बोले कौआ काटे/ काले कौए से डरियो/ माँ चाँटा देती है/ गाल पे-/ करम जली/ चल पानी भरले।[35]

उसका पढ़ने का सपना पूरा नहीं हो पाता। उसे अशिक्षित रखा जाता है और कम उम्र में विवाह के बंधन में बाँध दिया जाता है, 'नहीं देखा कभी उसने/ स्कूल या बस्ता/ कुछ दिन बाद/ ढोने लगेगी ईंट यह भी/ सड़क किनारे बैठी लड़की/ रहती है लड़की/ कुल नौ बरस ही।'[36]

यही नहीं, पढ़ना भी उस के नसीब में नहीं है। 'बस्ते और तख्ती को/ खड़ी तरसती/ लड़की सुनती है/ मिशन स्कूल की घंटी/ और गाने लगती है/ फिल्मी धुन अटपटी/ झूठ बोले कौआ काटे/ काले कौए से डरियो/ माँ चाँटा देती है/ गाल पे-/ करम जली/ चल पानी भरले।'[37]

उसका पढ़ने का सपना पूरा नहीं हो पाता। उसे अशिक्षित रखा जाता हे और कम उम्र में विवाह के बंधन में बाँध दिया जाता है, 'नहीं देखा कभी उसने/ स्कूल या बस्ता/ कुछ दिन बाद/ ढोने लगेगी ईंट यह भी/ सड़क किनारे बैठी लड़की/ रहती है लड़की/ कुल नौ बरस ही।'[38]

शादी के बाद बेटी की दयनीय हालत का अन्वेषण करते कवयित्री को 'पापा पापा गाती थी' और 'पढ़ाई' कविता में देखा जा सकता है। पापा की सांसों से जुड़ी बेटी की शादी के बाद की हकीकत को 'पापा पापा गाती थी' की इन पंक्तियों में चित्रित किया है :

जिस दिन आ कर डोली उतरी/ घूम गई तालों में चाभी/ सिल पर बट्टा हो कर पिस गई/ साबुन संग कपड़ों में धुल गई/ बर्तन के ढेरों में मँज कर/ सब्जी के ढेरों में तुल गई/ भूल गई कॉलेज की बातें/ भूली जादू वाली रातें/ दियासलाई हो कर जल गई/ भक् मिट्टी में मिट्टी मिल गई।[39]

विवाह के बाद पी-एच.डी. करती स्त्री की हकीकत से रू-ब-रू करवाती सुनीता जैन को 'पढ़ाई' कविता में देख सकते हैं। ये पंक्तियाँ उस की वास्तविक स्थिति से परिचित करवाती है :

लड़की बेहद घबराई हुई है/ रोज पूछता है उसका पति/ अभी हुआ नहीं क्या काम बाकी ?/ तरेड़ती है उसकी सास अपनी आँख/ लड़की बैठती है जब लेकर किताब और कॉपी/ बेहद डरी वह लड़की/ डर रही है कि उसे शायद/ न भी मिले उपाधि/ न ही कर पाए वह काम पूरा/ किसी दिन एक बच्चे के/ गर्भ में आन पसरने से।[40]

लिंग भेद की राजनीति पर चिंता व्यक्त करते लड़कियों के साथ अच्छे व्यवहार करने के लिए प्रेरित करती सुनीता जैन को 'उतराधिकार' कविता में देख सकते हैं। बेटियों की अपेक्षा बेटों को उतराधिकारी घोषित करती ये पंक्तियाँ देखिये :

पहले वे छीनते हैं/ बेटियों से उनका हक/ फिर फेंकते हैं थोड़ा सा पैसा/ थोड़ी खैरात/ बेटों को देते सारी की सारी/ ज़मीन, जायदाद, फिक्सड डिपाज़िट, देते आसीस, अपना संग अपना साथ/ और इस तरह से बेटियाँ इस देश की/ पैदा होते ही होतीं अनाथ।[41]

लिंग भेद की राजनीति पर चिंता व्यक्त करते सुनीता जैन स्पष्ट कहती है कि बेटों के साथ-साथ बेटियों की बेहतरी के बारे में भी सोचे। इस विचार को शब्दबद्ध करते वह कहती है, 'जिस दिन बनवाओ बेटे के लिए मकान/ उस दिन लाना एक ईंट बेटी के लिए/ ईंट पर ईंट रखते प्रतिदिन/ बन जाए शायद उसकी भी झोंपड़ी।'[42]

ऐसा कदम उठाने से लिंगभेद की वजह से माँ-बाप के व्यवहार से बेटियों को जो शिकायत रहती है उसकी जगह उसके मन में इज्जत पैदा होगी/ बेटी उगायेगी उसके चहुं ओर कुछ फूल/ अनार का वृक्ष/ एक कटहल, और कहेगी/ 'ये फूल मेरी अम्मा है/ और मेरे बाबा कटहल/ बहुत प्यार करते हैं वे मुझको/ भेजूंगी ये सारे के सारे उनको अनार।'[43]

औरत अबला नहीं, सबला है, वह शक्ति का रूप है। उस के इस शक्ति रूप को सुनीता जैन ने 'स्त्री शक्ति', 'दिन भर', 'नींद में', 'नई लड़की रसोई में' कविताओं में चित्रित किया है। भूख से लड़ाई करती औरत को चित्रित करती जैन कहती है, 'औरतें जब बीनती हैं लकड़ी/ थापती है गोबर, कूटती है धान/ पालती है बकरी/ वे लड़ रही होती है भूख से, भूख की लड़ाई।'[44]

घर का माहौल तभी अच्छा रहता है, जब आपसी संबंधों में मधुरता हो, संबंध मधुर न होने पर भी, वह पति से अलग न हो कर बच्चों को पालने के लिए निकम्मे, शराबी पति पर निर्भर नहीं रहती बल्कि अपनी शक्ति से बच्चों को पालती है :

औरतें जब पिटती हैं/ निकम्मे शराबी पति से/ पर तोड़ती या छोड़ती नहीं अपना घर/ पालती है बच्चों को कपड़े सी कर/ या जूठे बर्तन मल/ वे प्रतिवाद कर रही होती है/ अन्यास के प्रति पल-पल।[45]

यही नहीं वह उस समय भी काम कर रही होती है, जब उसे सच में आराम की जरूरत होती है, 'औरतें जब चढ़ती हैं एक-एक सीढ़ी/ सर पर छह ईंटे रख/ गर्भ में पलते शिशु को सँभालती, सँभाल-सँभाल/ वे नारा लगा रही होती है/ शोषण के प्रतिपक्ष में निस्वर।'[46]

औरत को बारीकी से देखती सुनीता जैन का यह कहना सही ही है, 'औरतें लड़ती हैं अपनी लड़ाई/ प्रतिदिन अपने-अपने स्तर पर/ वे नहीं बाँचती स्त्री शक्ति का एक भी आखर।'[47]

गृहस्थी की गाड़ी को चलाने में मेहनतकश औरत के योगदान को 'दिन भर' कविता में शब्दबद्ध करते सुनीता जैन कहती है :

दो पैसे बचाने या कमाने की खातिर/ औरतें उठा रहीं गट्ठर/ पहले बीनती कण्डे दिन भर/ फिर ढोती हैं सिर पर/ इतने लम्बे- लम्बे बोझे/....दो पैसे बचाने या कमाने की खातिर/ औरत छिलती-छीली जाती, दिन भर/ फिर भी ठेलती वे/ अपने-अपने, जैसे भी/ गृहस्थी और घर।[48]

स्त्री गृहस्थी, बाज़ार और दफ्तर में व्यस्त है। वह घर पहुँचने पर कितना थक जाती है, इसे 'नींद' कविता में देख सकते हैं। ये पंक्तियाँ इस ओर संकेत करती हैं :

उसने इन्द्रधनुष से कहा/ तुम छितराए रहना ऐसे ही/ आरपार, क्षितिज के/ मैं धो कर आती हूँ जल्दी से कुछ कपड़े रहे धुलते/ गृहस्थी फैलती गयी/ बाज़ार में ठेलमठेल थी/ दफ़्तर में मारा-मारी/ वह लौटी जब घर अपने/ उसकी आँखें थी बस नींद में।[49]

घर-घर जा कर खाना बनाने वाली लड़की की विशेषताओं से सुनीता जैन ने 'नयी लड़की रसोई में' कविता में परिचित करवाया है। वह मेहनतकश लड़की अपने काम में कितनी पारंगत है, इन पंक्तियों में इसे देखा जा सकता है :

बहुत देर तक/ उठते गिरते हैं उस के हाथ/ किसी कलाकार से, लगातार/ कई रंगों की सब्जियाँ धुल कट कर/ पहुँचती है कड़ाही या पतीले में/ आटे का पेट फूलता परात में।[50]

कर्मठ लड़की अपना वक़्त जरा भी बर्बाद नहीं करती। अपना काम निपटा कर वह खुशमिजाज लड़की दूसरे घरों में खाना बनाने के लिए निकल पड़ती है। वह काम से जी नहीं चुराती, अपनी मेहनत से कमाती, खाती है :

जब वह जाती है/ तो तीर सी, लगभग भागती/ वह कभी नहीं कहती/ मुझसे अपनी यातना-कथाएँ/ न ही उधार माँगने की भूमिकाएँ गढ़ती/ चार घरों में खाना बनाती है/ हँसते-हँसते, यह लड़की।[51]

अन्ततः कहें तो सुनीता जैन ने ये कविताएं उन मनुष्यों के लिए लिख डाली हैं जो देखने में तो मनुष्य प्रतीत होते हैं, पर उनमें मनुष्यता कहीं नजर नहीं आती तथा साथ ही उनसे मानवीय बनने की पहल भी करती हैं।

## संदर्भ-संकेत

[1]सुनीता जैन -राग और आग, पृ0 32
[2]वही, पृ0 32
[3]वही, पृ0 32
[4]वही, पृ0 33
[5]वही, पृ0 30
[6]वही, पृ0 26-27
[7]वही, पृ0 27
[8]वही, पृ0 27

[9]वही, पृ0 30
[10]वही, पृ0 31
[11]वही, पृ0 20
[12]वही, पृ0 20
[13]वही, पृ0 20
[14]वही, पृ0 20
[15]वही, पृ0 21
[16]वही, पृ0 25
[17]वही, पृ0 25-26
[18]वही, पृ0 26
[19]वही, पृ0 58
[20]वही, पृ0 59
[21]वही, पृ0 60
[22]वही, पृ0 60
[23]वही, पृ0 60
[24]वही, पृ0 60
[25]वही, पृ0 60
[26]वही, पृ0 60
[27]वही, पृ0 54-55
[28]वही, पृ0 55
[29]वही, पृ0 55-56
[30]वही, पृ0 56
[31]वही, पृ0 33
[32]वही, पृ0 21
[33]वही, पृ0 20-21
[34]वही, पृ0 22
[35]वही, पृ0 22-23
[36]वही, पृ0 24
[37]वही, पृ0 22-23
[38]वही, पृ0 24
[39]वही, पृ0 41
[40]वही, पृ0 47
[41]वही, पृ0 34
[42]वही, पृ0 34
[43]वही, पृ0 34
[44]वही, पृ0 57
[45]वही, पृ0 57
[46]वही, पृ0 58
[47]वही, पृ0 58
[48]वही, पृ0 41-42
[49]वही, पृ0 43
[50]वही, पृ0 24
[51]वही, पृ0 25

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9,58-60**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 09 दिसम्बर 2014

# नारी विमर्श : एक संक्षिप्त अवलोकन

डॉ. मनीषा शुक्ला*

*लेखक का घोषणा-पत्र*

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ *नारी विमर्श : एक संक्षिप्त अवलोकन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मनीषा शुक्ला* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

मनुस्मृति में कहा गया है *यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।* प्राचीन काल से ही भारतीय नारी के अनेक रूपों को समाज में मान्यता दी गयी है। नारी पुत्री, बहन, पत्नी और माता है, लेकिन उसके माता और पत्नी रूप ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। एक पुत्री अच्छी शिक्षा के कारण विवाह के बाद अच्छी पत्नी और माता बन सकती है। उपनिषदों में विदुषी नारियों का उल्लेख मिलता है। वृहदारण्यकोपनिषद् में विदुषी गार्गी की चर्चा है जिसने याज्ञवल्क्य से ब्रह्म के विषय में कई प्रश्न किये थे। याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी भी उच्चकोटि की विदुषी थीं जो मुक्ति विषयक ज्ञान में रूचि रखती थी। ऋग्वेद के कुछ सूक्तों मेंऋषिकाओं का भी वर्णन मिलता है। इनमें घोषा, लोपामुद्रा, अपाला, सूर्या, इन्द्राणी, शची, सार्पराज्ञी, विश्वधारा आदि का नाम महत्वपूर्ण हैं।

वैदिक समाज में नारी शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी। वैदिक समाज में केवल पुत्रों की ही नहीं वरन् पुत्रियों को भी शिक्षा देना आवश्यक था। नारी को वैदिक समाज में आदरणीय स्थान प्राप्त था क्योंकि वे उदात्त चरित्र, नैतिक आदर्श, शिक्षण योग्यता तथा सामाजिक सहयोग से भरा हुआ था। वैदिक समाज की नारी अपनी प्रौढ़ता, तत्वचिन्ता, वाक्पटुता तथा उदात्तता के लिये भारतीय समाज में चिरस्मरणीय रहेगी।

भारत में वैदिक युग में नारी की स्थिति कितनी ही गरिमामय रही हो, किन्तु मध्यकाल में यह निश्चित रूप से दयनीय थी। कन्या का जन्म अभिशाप माना जाता था। नारी के बचपन में पिता के, यौवन में पति के और बैधब्य में पुत्र के नियंत्रण में रहना पड़ता था। पर्दा प्रथा का प्रचलन था। बाल-विवाह होते थे। पुरूष एक से अधिक विवाह कर सकते थे। पति के शव के साथ सती होने का भी प्रचलन था। नारी घर की चहारदीवारी में बंद थी। मध्यकाल से पूर्व नारी की समाज में ऐसी स्थिति नहीं थी, इसका कारण मुस्लिम आक्रमण और मुस्लिम सभ्यता एवं संस्कृति थी।

18वीं एवं 19वीं शताब्दियों में भारत में नारी जागरण के प्रयत्न हुये। सती-प्रथा, विधवाओं के प्रति दुर्व्यवहार, बहुपत्नी-प्रथा, बाल-विवाह, सम्पत्ति अधिकारों का निषेध, नारी-शिक्षा आदि मुद्दों को लेकर राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महादेव गोविन्द रानाडे, महात्मा ज्योतिबाफुले, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, श्रीमती एनी बेसेंट आदि समाज सुधारकों

* प्रधान सम्पादिका, आन्वीक्षिकी पत्रिका, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत



© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

ने महिलाओं की स्थिति में सुधार के प्रयत्न किये। ...स्त्रियों के शोषण का माहौल तो उनके घर में ही होता है। जब पुरूष सत्ता को जन्म से ही एक व्यक्ति के रूप में, एक मनुष्य के रूप में विकसित नहीं होने देती। सभ्य कहे जाने वाले उस समाज में सारी असभ्यतायें घर की चहारदीवारी के भीतर ही दम तोड़ देती हैं। घर के अन्दर ही भ्रूणावस्था से लेकर मृत्यु तक स्त्रियों का शोषण, उत्पीड़न होते रहते हैं।

ईसापूर्व 300 का समय नारी के विकास में वह नियंत्रक केंद्र है जहाँ से अच्छी प्रथायें समाप्त होकर बुरी प्रथाओं का जागरण हुआ। शिक्षा के क्षेत्र में जहाँ पहले नारी शिक्षा बड़ी उन्नतिशील थी किन्तु 300 ईसा पूर्व के बाद इसमें क्रमशः ह्रास होता गया। प्रौढ़ विवाह समाप्त होकर बाल विवाह के अपना स्थान दे दिया। विधवा विवाह समाप्त हो गया। सती प्रथा तथा पर्दा प्रथायें जो समाज के लिये अभिशाप हैं, प्रारम्भ हुई। ऐसा क्यों हुआ ? इस प्रश्न के उत्तर में निम्नलिखित कारण प्रस्तुत किये जा सकते हैं- वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि नारियाँ विवाह के पूर्व ही अपने प्रेमियों के साथ भाग जाती थीं। बौद्ध तथा जैन साहित्य से यह विदित होता है कि विवाह की विभीषिका के कारण वह भिक्षुणी बनना विशेष उपयुक्त समझती थीं। इसलिये समाज में अनाचार और भ्रष्टाचार फैलने की सम्भावना थी। साथ ही इस समय विवाह एक आवश्यक बंधन स्वीकार किया जाने लगा था। इसलिये यह अनिवार्य हो गया कि उनके विवाह की अवस्था घटा दी जाये जिससे विवाह के पूर्व न वह प्रेम की कल्पना कर सके और न विवाहित जीवन के दुखों को जान सकें। इसका परिणाम यह हुआ कि उपनयन संस्कार शिक्षा आदि नारियों के लिये अब नहीं रह गयी। इनको जनसम्पर्क से बचाने के लिये तथा वास्तविक पति का अधिकार बनाये रखने के लिये पर्दा, सती आदि प्रथाओं में इन्हें बांधा गया। इस प्रकार इनके आध्यात्मिक विकास एवं नैतिक समुन्नति के लिये इनको बाह्य सुविधाओं से वंचित कर दिया गया।

सूत्रकार एवं स्मृतिकार हमेशा वर्णों में ब्राह्मण तथा परिवार में पति की ही प्रधानता को स्वीकार करते थे। इसलिये उन्होंने अपने युग में नारियों के जीवन को स्वच्छन्दता को पूर्णतया सीमाबद्ध कर दिया और उन्हें पूर्णरूप से पति के अधीन बना दिया। इस सम्बन्ध में अल्तेकर ने कहा है *इस समय से पति ही उसका गुरू हो गया, पति का घर उसके लिये पाठशाला बन गया और घर के काम-काज पाठ्य विषय बन गये।*

जहाँ इस प्रकार का समाज और विचारकों का सहयोग नारियों की अवस्था के ह्रास में मिला, वहीं परिस्थितियाँ भी इसमें बहुत हद तक सहायक हुईं। 300 ई0पू0 के बाद विदेशी जातियों का मिश्रण भारतीय समाज में होता गया चाहें वे शासन की लिप्सा से आक्रमणकारियों के रूप में आये हों या व्यापारी के रूप में। इनके संघों ने अपनी नैतिकता के रक्षार्थ बहुत-सी परम्पराओं को मान्यता दी जैसे- पर्दा प्रथा, सती प्रथा आदि।

इस प्रकार इन कारणों का सम्मिलित परिणाम यह हुआ कि सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि क्षेत्रों में सर्वत्र नारियों की स्थिति में ह्रास होने लगा।

क्या वह समाज जिसमें महिलाओं को ऐसा समझा जाता है, उन्नति कर सकता है ? हम यह भलीभांति जानते हैं कि जनसंख्या का लगभग आधा भाग अविकसित रह जाये, उसकी बढ़ोत्तरी बीच में रूक जाये और जिसको जीवन को सम्पूर्ण बनाने वाले अवसरों के उपयोग की कमी हो तो ऐसे समाज से यह आशा करना अव्यावहारिक है कि वह अपने पूर्ण क्षमताओं को विकास कर सकेगा। अविकसित व्यक्तियों से कोई देश महान नहीं बनता और ही कारण है कि उन्नति के दौड़ में भारत पीछे रह गया है। यदि हमने महिलाओं के विकास के रास्ते में कृत्रिम बाधायें न खड़ी की होतीं तो हमारा समाज अधिक पुष्ट, शक्तिशाली, अधिक जीवन्त और अधिक विकासोन्मुख होता, किन्तु हमने मौका खो दिया, उपलब्धियों और विकास की ऊँचाइयों की दौड़ में महिलाओं की शोचनीय स्थिति निश्चित रूप से एक रोड़ा बन गयी।

### *महिलाओं की स्थिति में सुधार हेतु उठाये गये कदम*

स्वतंत्रता के बाद भारतीय संविधान में स्त्री-पुरूष समानता (अनुच्छेद 14) की चर्चा की गयी। 1955 के हिन्दू विवाह अधिनियम 1954 के विशेष विवाह अधिनियम 1956, के पुनर्विवाह अधिनियम के द्वारा जहाँ नारी को सामाजिक अधिकार प्रदान किये गये, वहीं 1956 के हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम द्वारा उसे सम्पत्ति अधिकार प्रदान किया गया। महिला

सशक्तिकरण के लिये 1985 में महिला एवं बाल विकास विभाग की स्थापना की गयी। 31 जनवरी 1992 को *राष्ट्रीय महिला आयोग* का गठन किया गया एवं अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया जाने लगा। भारत सरकार द्वारा 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष घोषित किया गया। स्वयं सिद्ध योजना, महिला समाख्या कार्यक्रम इत्यादि योजनायें आरम्भ की गयीं।

इतने प्रयासों के बाद भी स्त्रियों की दशा सोचनीय है, लड़की आज भी अनचाही संतान है, यही पसंदगी या नापसंदगी लैंगिक भेदभाव का कारण है, जो परिवार के स्तर से आरम्भ होती है एवं महिलाओं के प्रति हिंसा को प्रोत्साहित करती है। सरकारी योजनाओं का क्रियान्वयन न होने के अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हो रहे हैं, अकुशल प्रबन्धन के साथ-साथ समाज भी महिलाओं की बदतर स्थिति के लिये उत्तरदायी है।

### *महिला सशक्तिकरण के लिये आवश्यक उपाय*

1. समाज की मानसिकता में परिवर्तन लाया जाये, साथ ही स्त्री को स्वयं की मानसिकता में परिवर्तन की आवश्यकता है, वह स्वयं को अबला नहीं सबला समझे।
2. महिला शिक्षा को बढ़ावा दिया जाये।
3. महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया जाये।
4. इस क्षेत्र से जुड़े कानूनों का वास्तविक क्रियान्वयन हो, पुलिस एवं प्रशासन को इसके लिये मनोवैज्ञानिक रूप से तैयार किया जाये।
5. महिलाओं में जागृति लायी जाये एवं उनमें आत्मविश्वास जगाया जाये, जिससे वे कर्तव्यों के साथ-साथ अधिकारों को भी समझें एवं उन्हें पाने के लिये सजग रहें।

नारी अब सिर्फ बाद-विवाद का विषय नहीं है। वह तो क्रांति रूप बन चुकी है, महिला सशक्तिकरण, सम्मान और अधिकार प्राप्त करने का नारा बन गया है। यहाँ यह विषय नहीं है कि स्त्री को किने अधिकार प्राप्त हैं, प्रश्न तो यह है कि उन पर अमल हो रहा है। महिला सशक्तिकरण के लिये आवश्यक है कि समाज का प्रत्येक वर्ग उसमें भागीदारी करें, एक ऐसा प्रयास किया जाये जिसमें सम्पूर्ण समाज जाग्रत हो उठे। सदियों की उपेक्षा को एक दिन में बदला नहीं ज सकता, किन्तु नियोजित प्रयास किया जाये तो सशक्तिकरण सम्भव है।

समाज का असंतुलित विकास अविश्वास एवं विघटन को बढ़ावा देता है। यदि पतन से बचना है तो नारी की वे सभी अधिकार एवं सुविधायें देनी होगी जिससे वह अधिकारिणी है; क्योंकि एक पंख से समाज रूपी चिड़िया उड़ान नहीं भर सकती।

## संदर्भ

ऋग्वेद; 10/31/40
वही, 1/17-9, 1-2
वही, 91
अल्तेकर -पोजिशन ऑफ वुमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन
योजना; मार्च 2006

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,61-64
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 20 नवम्बर 2014

# प्रकृति के हर घटक के संरक्षण का हम व्रत लें

डॉ. अंजली श्रीवास्तव*

*लेखक का घोषणा-पत्र*

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *प्रकृति के हर घटक के संरक्षण का हम व्रत लें* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अंजली श्रीवास्तव* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

*सारांश*

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। यहाँ मानव जीवन को सदैव मूर्त एवं अमूर्त रुप में पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, सूर्य, चंद्र, नदी, वृक्ष एवं पशु-पक्षी आदि के साहचर्य में ही देखा गया है। भगवान कृष्ण ने स्वयं को ऋतु स्वरुप, वृक्ष स्वरुप, नदी स्वरुप एवं पर्वत स्वरुप कहकर इनके महत्व को रेखांकित किया है। पर्यावरण के ये तत्व हमारे जीवन के आधार हैं, अतः इनको संरक्षण प्रदान करना हमारा कर्त्तव्य है। हमारा जीवन पर्यावरण से सघनता से संबंधित है। भारतीय संस्कृति मानती है कि इस देह की रचना पंचतत्वों से ही हुई है, इसलिए भी इनका संरक्षण महत्वपूर्ण है ।

प्राकृतिक अनुराग एवं प्रकृति संरक्षण की चिंतनधारा भारतीय संस्कृति की सर्वोपरि विशेषता है। भारतीय ऋषि-मनीषियों को प्रकृति का पारदर्शी ज्ञान था। उन्हें पर्यावरण प्रणाली का संपूर्ण एवं समग्र ज्ञान था। उन्हें प्रकृति, जीव के अंतर्संबंधों और इन संबंधों से उपजे परिणाम, प्रभावों का पूर्ण अनुभव था। इसी कारण भारतीय संस्कृति में प्रकृति को माता के महनीय पद से अलंकृत किया जाता है और इसके घटक पंचतत्वों तथा वृक्ष-वनस्पतियों को देवतुल्य मानकर अभ्यर्थना की जाती है।

पर्यावरण संरक्षण का तात्पर्य है- हम अपने चारों ओर के आवरण को सुरक्षा प्रदान करें, उसके घेरे को अभेद्य बनाएँ तथा उसे अनुकूल बनाए रखें। पर्यावरण और प्राणी एक दूसरे पर आश्रित हैं। इनके बीच का संबंध गहरा है। एक प्रभावित होता है तो इसका प्रभाव दूसरे पर भी पड़ता है। यही कारण है कि भारतीय चिंतन में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है, जितना मानव जाति का इतिहास।

पर्यावरण के तीन कारक हैं- मृदा, वायु तथा तापमान। वेदों में पृथ्वीलोक, अंतरिक्षलोक तथा द्युलोक हैं, जो सर्वव्यापक शक्ति अर्थात् विष्णु भगवान द्वारा रचित एवं संरक्षित हैं। वैदिक मंत्रद्रष्टा ऋषि पर्यावरण के प्रदूषण के भय से अक्रांत थे तथा मानव को बारंबार उसके संरक्षण के लिए सतर्क एवं सचेत करते रहे। ऋग्वेद के अनुसार प्रकृति का अतिक्रमण तो देवों के लिए भी निषिद्ध है- 'अतिक्रम्य न गच्छन्ति मरुतः। मरुतो नाह रिश्यथ।।'

* सहायक प्राध्यापिका, अर्थशास्त्र विभाग, शासकीय महाराजा महाविद्यालय [सागर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध] छतरपुर (मध्य प्रदेश) भारत



© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

ऐसे में मनुष्यों को भला कैसे इसको क्षति पहुँचाने का अधिकार मिल सकता है। ऋषि कहता है कि संपूर्ण जैवमंडल (बायोस्फियर) का नियमन एवं सम्मान ही इसकी संरक्षण एवं सुरक्षा है- 'नि यद्यामाय वो गिरिर्नि सिन्धवो विधर्मणे। महे शुश्माय येमिरे।।' (ऋग्वेद 8/7/5)

यजुर्वेद कहता है- 'अंतरिक्षं मा हिंसीः।

अथर्ववेद के अनुसार- 'यस्या हृदयं परमे व्योमन्' (12/1/8) अर्थात् जिस प्रकार हृदय की धड़कन पर प्राणी का जीवन निर्भर है, उसी प्रकार अंतरिक्ष (परम व्योम) की सुरक्षा में ही पृथ्वी और पर्यावरण की सुरक्षा है। अंतरिक्ष रुपी हृदय के नष्ट होते ही समस्त ब्रह्मांड का विनाश सुनिश्चित है। जीवों की अनुक्रियाओं को प्रभावित करने वाली समस्त भौतिक तथा जैवीय परिस्थितियों का योग ही पर्यावरण है। इसे जीवमंडल भी कहते हैं। यह जीवमंडल जल, स्थल और वायु के भागों का योग है।

जैवमंडल (बायोस्फियर) प्राणी जगत के जीवन के लिए उपयोगी है। यह जलमंडल से जल, स्थलमंडल से भोजन एवं निवास तथा वायुमंडल से प्राणवायु ग्रहण करता है। ये तीनों मंडल एकदूसरे के पूरक हैं। इनमें से एक के नष्ट होने पर जीव का अस्तित्व संभव नहीं है। इन तीनों मंडलों से प्राप्त ऊर्जा का समुचित प्रयोग करके हम पर्यावरण को संरक्षित रख सकते हैं।

इनकी ऊर्जा का अनुपात से अत्याधिक प्रयोग ही प्रदूषण कहलाता है। वेदों के ऋषि इस प्रदूषण के प्रति अत्यंत संवेदनशील थे। प्रकृति में सामंजस्य एवं साहचर्य बना रहे, इसके लिए वे सतत प्रयत्नशील रहे। भारतीय ऋषियों ने संपूर्ण प्राकृतिक शक्तियों को देवतास्वरुप माना और इनकी दिव्यता के प्रति श्रद्धासुमन अर्पित किए हैं।

ऊर्जा के अजस्त्र और अक्षय स्त्रोत सूर्य को 'सूर्य देवो भव' कहा गया है। सूर्य प्राणों का आधार है और इसके बिना पृथ्वी पर जीवन संभव नही है। इसी प्रकार वायु को भी देवतुल्य माना गया है। उपनिषद् में मान्यता है कि वायु ही प्राण बनकर शरीर में वास करती है। ऐसी पवित्र एवं दिव्य मान्यता हमें इसे कभी भी प्रदूषित करने की आज्ञा नही देती है। द्यावा पृथ्वी सूक्त में आकाश को पिता और पृथ्वी को माता मानकर उनसे अन्न और यश देने की कामना की गई है। ऐतरेय ब्राह्मण (8/5) में पृथ्वी को ऐश्वर्य और सौभाग्यदात्री कहा गया है। पृथ्वी सूक्त के अनुसार वन तथा वृक्ष वर्षा लाते हैं, मिट्टी को बहने से बचाते हैं, बाढ़ तथा सूखे को रोकते हैं तथा दूषित गैसों को खींचते हैं। यही कारण है कि पुरातनकाल में वृक्षों का देवता के समान पूजन किया जाता था। कृष्ण की गोवर्धन पर्वत की पूजा की शुरुआत का लौकिक पक्ष यही है कि जन-सामान्य मिट्टी, पर्वत, वृक्ष एवं वनस्पति का आदर करना सीखें। स्वयं भगवान कृष्ण गीता में उद्घोष करते हैं- 'अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् (9/16) अर्थात् मैं ही औषधि हूँ तथा वृक्षों में अश्वत्थ (पीपल) हूँ। वेदों और आरण्यक ग्रंथों में वनस्पतियों को नमन करने की परंपरा है। अश्वत्थ, वट, बिल्व, नीम, कदंब, तुलसी, श्रीफल, पलाश, कुश, दूर्वा, बबूल, आम, चंदन, देवदार आदि पेड़-पौधों की महत्ता अक्षुण्ण बनी रही है।

भारतीय परंपराओं के अलावा बौद्ध और जैन परंपराओं में भी वृक्षों को आदरणीय स्थान प्राप्त है। साँची के तोरण में वृक्षों का अलंकरण अत्यंत मनोहारी है। इसमें शाल, अशोक, चंपा एवं पलाश वृक्ष का सजीव वर्णन मिलता है। ग्रीक परंपरा में एडोडिनस, अरिस, ओरिसस, डिमीटर जन्म या वनस्पति के देवता माने गए हैं। अफ्रीका की कई जातियाँ अच्छी फसल पाने के लिए वृक्षों के चारों ओर नृत्यगान कर उनकी अभ्यर्थना करती थीं। पूर्वी अफ्रीका के वानिका नामक कबीले में पेड़ काटना मातृहंता जैसा जघन्य पाप माना जाता है। केंद्रीय आस्ट्रेलिया के डीटी कबीले के लोग पेड़ों को अपने पूर्वजों का रुपांतरण मानते हैं। फिलीपीन द्वीपवासी भी उन पर अपने पूर्वजों की आत्मा का वास मानते हुए उन्हे पुरोहित की आज्ञा से ही काटते हैं। अरण्य संस्कृति से आकृष्ट होकर वाल्मीकि, कालिदास, बाण, घोष, माघ, सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद आदि कवियों ने वन- उपवनों का मनोहारी वर्णन किया है। वासुदेवशरण अग्रवाल ने इंद्र महोत्सव का उल्लेख किया है। इसके द्वारा विश्वव्यापी प्रजनन और पृथ्वी की कोख में से पनपने वाले वनस्पति जीवन को देखकर मानव के स्वाभाविक हर्ष की अभिव्यक्ति की जाती थी। इंद्र महोत्सव की तुलना यूरोप के स्मे-पोल उत्सव से की जाती है, जो कनाडा और अमरीका में अत्यंत लोकप्रिय है। ऐसा एक उत्सव गढ़वाल-कुमाऊँ, हिमालय में 'फूलपाखी' के रुप में मनाने की प्रथा है। वृक्षों को सम्मान प्रदान करना तथा उन्हे संरक्षण देना पर्यावरण संस्कृति का मूल उद्देश्य है।

प्रदूषण रोकने के लिए पीपल, नीम, तुलसी आदि वृक्षों को लगाया जाता है। इनमें धूल आदि सोखने की असीमित शक्ति होती है। पीपल 4.15 प्रतिशत, अशोक 4.56 प्रतिशत, आम्रवृक्ष 4.05 प्रतिशत, इमली 2.08 प्रतिशत, कदंब 4.56 प्रतिशत,

वट 3.59 प्रतिशत, बेर, छोटी इलायची 1.44 प्रतिशत धुआँ तथा धूल सोखने की शक्ति रखते हैं। एक शोध अध्ययन के अनुसार प्रत्येक दिन वायु में 5.1 टन सल्फर डाइआक्साड, 206.3 टन हाइड्रोकार्बन, 0.03 टन नाइट्रोजन तथा 1.07 टन एसिड मिश्रित होता है। गैसों को अवशोषित करने के लिए उपर्युक्त पेड़-पौधों का आरोपण करें तो काफी अंश तक प्रदूषण से बचा जा सकता है।

उपनिषदों और आरण्यकों में पर्वतों की महिमा और उनकी पूजा के उल्लेख मिलते हैं। हरिवंश पुराण (2/16/1-44) में गोवर्धन पूजा की अवधारणा को कृषि और पशुपालन के संदर्भ में विस्तार से वर्णित किया गया है। महाकवि कालीदास ने हिमालय को देवात्मा केवल काव्य मोहवश नहीं कहा। हिमालय भारतभूमि का गर्वोन्नत मुकुट है। वर्षा, शरद एवं अन्य ऋतुक्रम का संचालक, अनेक नदियों का उद्‌गमस्त्रोत वही है, जिसने इस देश की भूमि को शस्यश्यामला बनाया और कई तीर्थों को बसाया। पर्वतों, नदियों, वनस्पतियों, वनों, तीर्थों, आश्रमों आदि से संबंधित ही नहीं वरन देवी-देवताओं की पावनस्थली भी कहलाया। इस संदर्भ में हिमालय को ही नहीं मंदर, मेरु, विंध्य, रामगिरि, अरुणाचलम् आदि को भी यह गौरव प्राप्त है।

पृथ्वी और पर्वतों की भांति जल की पूजा भी सामान्य मनोभाव रहा है। यह उच्चस्तरीय अवधारणा थी कि वैदिक ऋषि नदियों को अपनी बात सुनाने के लिए प्रार्थना करते थे। गंगाजल की महत्ता सर्वविदित है। अपनी पर्यावरणीय शुद्धता बनाए रखने के कारण उन्हे पूजनीय माना गया है। जल सतत प्रवाहमान है। वह शरीर को जीवन देता है, प्यासों की प्यास बुझाता है। वही मिट्‌टी में घुलकर वनस्पतियों को पनपाता है। उसी से अन्न उगते हैं। वही फल बनता है और उसी से बल और तेज की स्त्रष्टि होती है। जन्म और जीवन के इन अनिर्वचनीय रिश्तों को ऋषियों ने बखूबी पहचाना था। ब्रह्मा के लिए 'अपक' शब्द का प्रयोग होता है, जिसका अर्थ है जल-क्रीड़ा। नारायण शब्द नीर से जुड़ता है। नदी तट पर देवताओं का वास माना जाता था और ऋषियों के आश्रम नदी तट पर ही हुआ करते थे। वहां का प्राकृतिक दृश्य मन को शांति प्रदान करता और चिंतन-मनन की ओर उन्मुख करता था।

नदी के समान समुद्र को भी उसी प्रकार श्रद्धासिक्त सम्मान प्रदान किया गया है। दक्षिण के गर्जनशील महासागरों के साथ भूमि का उतना ही अभिन्न संबंध है, जितना कि उत्तर के पर्वतों के साथ। दोनो एक ही धनुष की दो नोक हैं। उत्तर और दक्षिण के ये भौगोलिक संबंध बहुत गहरे हैं। वस्तुतः भारत का कोई भाग ऐसा नही है, जहाँ पर्यावरण को संस्कृति का स्वरुप नहीं दिया गया हो। भूमि और जल का योग ही संस्कृति का परिचायक है।

उपर्युक्त तथ्य पर्यावरण और संस्कृति के उन संवेदनशील संबंधों को रेखांकित करते हैं, जहाँ पर जीवन को एक नया आयाम मिलता था और जीवन स्वाभाविक रुप से विकसित होता था। उपनिषद् में उल्लेख है- 'हे अश्वरुपधारी परमात्मा! बालू तुम्हारे हृदयखंड हैं, समग्र वनस्पतियाँ, वृक्ष एवं औषधियाँ तुम्हारे रोम सदृश हैं। ये सभी हमारे लिए शिव बनें। हम नदी, वृक्षादि को तुम्हारे अंगस्वरुप समझकर इनका सम्मान और संरक्षण करते हैं।' यही वजह है कि पूजा के कलश में सप्त नदियों का जल एवं सप्त मृत्तिका का पूजन किया जाता है, ताकि हमारे अंदर वृक्ष, नदी, भूमि को पवित्र बनाए रखने की भावना संचरित होती रहे। सिंधु सभ्यता की मोहरों पर पशुओं एवं वृक्षों का अंकन, गुप्त सम्राटों द्वारा वन को पूज्य मानना, मार्ग में वृक्ष लगवाना, कुएँ खुदवाना, दूसरे प्रदेशों से वृक्ष मंगवाना आदि तात्कालिक प्रयास पर्यावरण प्रेम को ही प्रदर्शित करते हैं। वैदिक ऋषि प्रार्थना करता है- पृथ्वी, जल, औषधि एवं वनस्पतियाँ हमारे लिए शांतिप्रद हों। ये शांत तभी हो सकते हैं, जब हम इनका सभी स्तरों पर संरक्षण करें।

पर्यावरण की महत्ता इतनी थी कि हमने उसे अपनी शाश्वत संस्कृति में स्थान दिया है परंतु व्यवसायिक बुद्धि ने इस संवेदनशील संबंध को इतना तार-तार कर दिया कि लगता है, सब कुछ खो गया है। नदी का जल, बहती प्राण वायु, अन्न उपजाने वाली भूमि सभी प्रदूषित एवं सत्त्वहीन हो चुके हैं। कहीं भी कुछ पल ठहरने के लिए स्थान नहीं है। हमारे संबंध प्रकृति से टूट-बिखर गए हैं।

मानव को प्रकृति का अभिन्न अंग मानने वाले हमारे सूक्ष्मद्रष्टा इस तथ्य से सुपरिचित थे कि जड़ जगत अर्थात् पृथ्वी, नदियाँ, पर्वत, वन एवं वन्यजीव तथा चेतन जगत के मध्य पारस्परिक एवं समानुपातिक सामंजस्य है और इसी सामंजस्य एवं संबंध के कारण ही पर्यावरण एवं पारिस्थितिकीय तंत्र में साम्य एवं संतुलन कायम रहता है। यह ईकोलॉजिकल आयाम मानवीय अस्तित्व को गहराई से प्रभावित करता है। पारिस्थितिकीय असंतुलन का दुष्प्रभाव बड़ा ही घातक होता है। इसे विराट दायरे

में देखा जा सकता है। इससे केवल अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मौसम-चक्र के परिवर्तन आदि स्थिति ही नहीं होती, बल्कि इससे व्यक्ति और उसका आंतरिक व्यक्तित्व, दोनो ही प्रभावित होते हैं। पर्यावरणविद् एवं मनोविज्ञानी इस तथ्य से भली भाँति परिचित हैं कि मानवीय व्यक्तित्व के त्रिविध आधार भौतिक, जैविक और मानसिक तीनों परिवेष और पर्यावरण से गहराई से जुड़े हुए हैं। अंतःकरण का प्रकृति से संबंध है। आज इसी क्षेत्र में अध्ययन-अन्वेषण जारी है। इसके निष्कर्ष इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि पर्यावरण असंतुलन हमारे मन भावना आदि को भी प्रभावित किए बिना नहीं रहता। मनोवैज्ञानिक आज खुले रुप में स्वीकारने लगे हैं कि पर्यावरण प्रदूषण हमारे अंदर अनेक प्रकार के अज्ञानजन्य मानसिक विकारों को जन्म दे रहा है।

पर्यावरण संरक्षण एवं प्रदूषण निराकरण के लिए सर्वोपरि आवश्यकता है- 'एक अखंडित अनुशासन।' इसी को मूल मंत्र मानकर पर्यावरण के अपार क्षरण को रोका जा सकता है। प्रकृति के सारे घटक अनुशासित एवं नियमबद्ध तरीके से परिचालित हैं। सूर्य और चंद्रमा नियमबद्ध तरीके से अपनी कक्षा में घूर्णन करते हैं तथा ताप एवं शीतलता बिखेरते हैं। जल नीचे की ओर प्रवाहित होता है, अग्नि आकाश की ओर उठती है, पर्वत अपने स्थान पर अडिग एवं अटल रहते हैं। यदि ये सभी अपनी सीमाएँ लाँघ जाएं तो क्या होगा! अतः हमें भी अपनी सीमाओं में रहकर प्रकृति के हर घटक को संरक्षित करने का व्रत लेना चाहिए। इनके संरक्षण एवं पोषण में ही हमारी सुख, शांति एवं समृद्धि समाहित है। अतः पेड़ लगाकर, अपने आस-पास के वातावरण को स्वच्छ रखकर, निरीह जीवों की रक्षा कर तथा पेड़, नदी, भूमि आदि को देवतुल्य मान अभ्यर्थना करनी चाहिए। यही युग की मांग है और वर्तमान समस्याओं का समाधान भी। समाज में समृद्धि एवं व्यक्तित्व विकास का यही मूलमंत्र है।

## संदर्भ सूची

अखंड ज्योति
ऋग्वेद, 8/7/5
अथर्ववेद, 12/1/8
पृथिवी सूक्त
श्रीमद्भगवद्गीता
हरिवंश पुराण, 2/16/1-44

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9,65-68**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 06 दिसम्बर 2014

# महिला सशक्तिकरण : एक संक्षिप्त पूर्वानुलोकन

मौसमी कुमारी*

*लेखक का घोषणा-पत्र*

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *महिला सशक्तिकरण : एक संक्षिप्त पूर्वानुलोकन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मौसमी कुमारी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

महिला सशक्तिकरण क्या है? क्या महिलाओं को अस्त्र-शस्त्र देकर शक्ति प्रदान कर देना है? या महिलाओं को घर परिवार में सर्वोपरि करके सभी तरह के अधिकार प्रदान कर देना ही सशक्तिकरण है?

नहीं, महिलाओं के सशक्तिकरण का तात्पर्य है कि महिलाओं को उनके परिवार घर से लेकर समाज के कोने-कोने तक पुरूषों के समान ही पद, अधिकार, व्यवहार और सम्मान प्राप्त हो। महिला सशक्तिकरण का मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि उन्हें पुरूषों के विरूद्ध मोर्चा बन्द कर दिया जाये, बल्कि इसका मतलब यह है कि पितृसत्ता में कदम दर कदम महिला को निम्न एवं दोयम दर्जे का स्थान सिर्फ महिलाओं के लिये ही कुछ प्रकार के निषेध (खान-पान, ब्यवहार, रहन-सहन आदि) के नियंत्रण के विरूद्ध स्वतंत्र/ सम्मानजनक स्थिति में लाना है। इस प्रकार से जब तक कि हर कोण, हर भावना, हर दृष्टिकोण से महिला होना नहीं, बल्कि पुरूषों के समान ही मनुष्य होना सर्वमान्य न हो जाये, सशक्तिकरण है।

आज महिला सशक्तिकरण के लिये चार महत्वपूर्ण स्तम्भों की मजबूती की आवश्यकता महसूस होती है- सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं संवैधानिक आवश्यकता। सर्वप्रथम सामाजिक पक्ष पर मजबूती की आवश्यकता है। सामाजिक सशक्तिकरण में यदि तीन महत्वपूर्ण आयामों पर विशेष परिवर्तन किया जाये तो सम्भव है कि महिलाओं की स्थिति सम्माननीय हो जाये। *प्रथम, परिवार;* यदि परिवार और नातेदार समूह के पुरूष यह धारणा अपना लें, कि हमारे घर की स्त्रियाँ हमारे समान ही हैं। वह सभी पदों, अधिकारों और ब्यवहारों की हकदार हैं जितने कि हम। इस धारणा के कारण परिवार में महिलाओं को समानता प्राप्त होगी। एक प्रकार से परिवार में लोकतांत्रिक ब्यवस्था स्थापित हो जायेगी। पुरूषों को विरोधी न बताकर महिला/ पुरूष को समान ही बताया जाये; क्योंकि विद्वानों ने कहा कि बच्चे ही भविष्य होते हैं, तो इस आधार पर भविष्य को यदि वर्तमान से ही परिवर्तित करने का प्रयास किया जाये, तो हम सफल जरूर होंगे। *द्वितीय, शिक्षण संस्थान;* परिवारों से मिली समानता को यदि कायम न रखा जाये तो वह बेमानी हो जायेगी। ऐसी स्थिति में यह

* शिक्षाशास्त्र विभाग, सिद्धू कान्हू मुर्मू विश्वविद्यालय दुमका (झारखण्ड) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)



© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

प्रयास रहना चाहिये कि शिक्षण संस्थानों में शुरूआत से ही ऐसी धारणाओं को प्रचलित किया जाये जिसमें समता की भावना हो। *तृतीय, व्यवसायिक क्षेत्र;* इसके अन्तर्गत वह सभी क्षेत्र जो कि अर्थ से किसी न किसी प्रकार से जुड़े हैं। तात्पर्य है कि सब्जी की दुकान से लेकर कल-कारखानों तक। इस प्रकार अर्थ से जुड़े हर क्षेत्र में महिलाओं को परिवार की ही तरह समानता प्राप्त होगी।

आर्थिक सशक्तिकरण एक और महत्वपूर्ण स्तम्भ है। आर्थिक सशक्तिकरण का तात्पर्य आर्थिक स्वतंत्रता से है, आर्थिक स्वतंत्रता ही वह स्वतंत्रता है जो व्यक्ति में व्यक्तित्व विकास और अस्तित्व (प्रस्थिति) को निर्मित करने में महत्वपूर्ण आधार होता है। आर्थिक स्वतंत्रता के दो प्रकार हो सकते हैं :

1. *पैतृक सम्पत्ति एवं धन प्राप्ति :* उत्तराधिकार के रूप में पैतृक सम्पत्ति और धन प्राप्ति हो सकती है। यह एक तरह से आर्थिक स्वतंत्रता अवश्य है लेकिन फिर भी यह सशक्तिकरण में एक सीमा तक ही सहयोगी हो सकती है।
2. *अर्जित आर्थिक स्थिति :* यह एक महत्वपूर्ण आधार है, आर्थिक सशक्तिकरण का महिलाओं द्वारा स्वयं धन अर्जित करना। यह आर्थिक स्वतंत्रता का महत्वपूर्ण बिन्दु है। इससे महिलाओं में तर्क करने, निर्णय लेने, समस्या का हल जानने, अपनी बात करने या विचार प्रस्तुत करनें के लिये आत्मविश्वास बढ़ता है।

राजनैतिक सशक्तिकरण भी महिला सशक्तिकरण का एक मजबूत स्तम्भ है। जिसका उद्देश्य राजनीति में महिलाओं को समानता प्रदान करना है। तात्पर्य यह है कि राजनीतिक प्रणाली जो राजनीतिक निर्णयन की प्रक्रिया में महिलाओं की भागीदारी एवं नियंत्रण का समर्थन करें।

संवैधानिक सशक्तिकरण का तात्पर्य है कि एक ऐसी प्रणाली कानूनी संरचना का प्रावधान करना जो महिला सशक्तिकरण में सहयोगी हो। कानून द्वारा महिला को समानता की स्थिति में स्थापित करना। कानून की दृष्टि से पुरूष होना महत्वपूर्ण न हो और न ही महिला होना हीनता। तात्पर्य यह है कि कानूनी दृष्टि से महिला/ पुरूष समान हों।

## *संवैधानिक प्रावधान, विशेष कानून और महिला सशक्तिकरण*

भारतीय संविधान में लैंगिक समानता और भेदभाव से बचाव के लिये कई धाराओं की रचना की गयी है। जो इस प्रकार है :

1. कानून की निगाह में बराबर और कानून की बराबर रक्षा। (अनुच्छेद -14)
2. अन्य वस्तुओं के साथ-साथ लिंग के आधार पर भेदभाव, हीनता विशेषता, सार्वजनिक स्थलों पर पहुँच की मुफ्त उपलब्धता और राज्यों को महिलाओं के लिये विशेष प्राविधान बनाने के अधिकार। (अनुच्छेद -15)
3. जन-सेवायोजन (रोजगार) के अवसरों की समानता। (अनुच्छेद -16)
4. राज्य द्वारा स्त्री-पुरूष के स्वास्थ्य एवं शक्ति को सुरक्षित रखने के लिये अपनी सार्वजनिक नीति का निर्धारण। (अनुच्छेद -39-ई0 तथा एफ0)
5. कार्य की मानवीय दशायें तथा महिलाओं के लिये मातृत्व राहत। (अनुच्छेद -42)
6. राज्य द्वारा समान नागरिक संहिता बनाने के प्रयास। (अनुच्छेद -44)
7. महिलाओं के सम्मान के विपरीत प्रथाओं को त्यागना प्रत्येक नागरिक का मूलभूत कर्तव्य। (अनुच्छेद -51 ए0-ई0)
8. महिलाओं के विरूद्ध, हिंसा, और भेदभाव के मामलों की सुनवाई के लिये महिला पुलिस कर्मियों और महिला अधिकारियों की नियुक्ति के प्रावधान किये गये हैं, ताकि दहेज के कारण मृत्यु, ससुराल की प्रताड़ना, यौन-अपराध अथवा रोजगार में भेदभाव के मामलों पर शीघ्र और सहानुभूतिपूर्वक कार्यवाही की जा सके क्योंकि महिलाओं की नीति-निर्माण और शासन प्रक्रिया में सम्मिलित करने के लिये 73वें व 74वें संविधान संशोधन अधिनियम, पंचायती राज अधिनियम (1993) के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के लिये 30 प्रतिशत स्थान आरक्षित करने का प्रावधान किया गया।

## *महिला सशक्तिकरण और वैधानिक उपाय*

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही भारतीय महिलाओं की स्थिति में सुधार तथा उनको स्वावलम्बी बनाने के लिये पुराने अधिनियमों में संशोधन और नये अधिनियम पारित किये गये। सकारात्मक परिवर्तन के ये प्रयास स्वतंत्रता के पश्चात् से जारी हैं जिनमें दो दशकों में उल्लेखनीय तेजी आई है, जैसे :

1. हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, विशेष विवाह अधिनियम 1954, विवाह में विधि संशोधन अधिनियम 1976 द्वारा संशोधन करके किसी लड़की को जिसका बाल्यावस्था में विवाह हो गया हो, यह अधिकार दिया गया है कि वह उसके वयस्क होने से पहले हुये विवाह को निरस्त कर सकती है। पारस्परिक सहमति के आधार पर विवाह-विच्छेद का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है तथा क्रूरता और परित्याग को विवाह-विच्छेद के आधारों में सम्मिलित कर लिया गया है।
2. प्रसूति सुविधा अधिनियम 1961
3. समान वेतन अधिनियम 1976, में महिलाओं और पुरूषों को एक जैसे काम के लिये समान भुगतान की व्यवस्था की गयी है।
4. बाल विवाह अवरोधक संशोधन अधिनिमय 1973, द्वारा विवाह की आयु लड़कियों के लिये 15 से बढ़ाकर 18 तथा लड़कों के लिये 18 वर्ष से 21 कर दी गयी।
5. अनैतिकता निवारक अधिनियम 1986, के माध्यम से वेश्यावृत्ति सम्बन्धी कानून को कड़ा और प्रभावी बनाया गया है ताकि स्त्री या पुरूष ऐसे सभी व्यक्तियों को शामिल किया जा सके जो अनैतिक कार्यों के लिये महिलाओं तथा लड़कियों का शोषण करते हैं।
6. 1961 में महिलाओं के अभद्र प्रदर्शन निवारक अधिनियम के माध्यम से यह प्रावधान किया गया कि विज्ञापनों और पुस्तकों आदि के द्वारा महिलाओं अश्लील प्रदर्शन न किया जाये।
7. सती निवारक अधिनियम 1987, जिसके अन्तर्गत सती प्रथा को गौरवान्वित करने वालों के लिये भी 1 से 7 वर्ष की सजा का प्रावधान किया गया।
8. महिलाओं की अवस्थिति, निवर्तमान विधियों और नीतियों की कुशलता और परिणामों का अध्ययन करने व उनकी बेहतरी के लिये सुझाव देने हेतु एक राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना 1992 में की गयी।
9. महिलाओं को घरेलू हिंसा से बचाने के लिये *घरेलू हिंसा निवारक अधिनियम 2007,* का निर्माण किया गया है।
10. सम्पत्ति अधिकार अधिनियम 2007
11. फौजदारी कानूनों, जैसे- गवाही कानून, भारतीय दण्ड संहिता और आपराधिक प्रक्रिया संहिता में संशोधन किये गये जिनके अन्तर्गत महिलाओं के साथ छेड़खानी, बलात्कार, क्रूर व्यवहार को दण्डनीय अपराध बनाकर दण्ड के प्रावधानों को और कड़ा किया गया। भारतीय दण्ड संहिता में दहेज मृत्यु को एक नये अपराध के रूप में शामिल किया गया है।

उपरोक्त वैधानिक उपायों के माध्यम से महिलाओं की स्थिति में सुधार के उल्लेखनीय प्रयास किये गये हैं तथा निरंतर जारी हैं।

बीसवीं शताब्दी में नारीवादी मूलक सामाजिक विचार को एक सामाजिक आन्दोलन के रूप में शुरू हुये महिलावाद से न तो अलग किया जा सकता है और न ही पृथक् रूप से समझा जा सकता है। नारीवादी आन्दोलन की शुरूआत इग्लैंड में प्रसिद्ध दार्शनिक एवं विचारक मैक्सशील के नेतृत्व में सन् 1920 में समान मताधिकार के मुद्दे को लेकर हुई थी, जो बाद में संवैतनिक कार्य (नौकरी) के क्षेत्र और घरेलू कार्यकलापों, कानूनी सम्बन्धों और सांस्कृतिक प्रथाओं में मूलभूत लैंगिक समानता के एक आमूल परिवर्तनवादी आन्दोलन में बदल गया। इस प्रकार महिला सशक्तिकरण से सम्बन्धित विचारों का उद्भव कई भिन्न-भिन्न रूपों में हुआ, जैसे उदारवादी, मार्क्सवादी और उत्तर आधुनिकतावाद में हुआ। सामान्य रूप में नारी मूलक आन्दोलन का उद्देश्य लैंगिक विभिन्नताओं और विशिष्ट रूप में पितृसत्तात्मक सिद्धान्त के संदर्भ में समाज में महिलाओं की गिरी हुई प्रस्थिति को समझना और स्पष्ट करना है।

भारत में कानूनी व्यवस्था सहित महिलाओं का पूर्ण विकास और प्रगति करने के लिये अनेक उपाय किये गये हैं, ताकि महिलाओं के लिये समानता के आधार पर मानवाधिकार का उपयोग और उपभोग सुनिश्चित किया जा सके।

हमारे देश में स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक एवं आर्थिक अधिकारिता के क्षेत्र में विशेष रूप से महिलाओं के लिये बनाये गये कार्यक्रमों के सकारात्मक परिणाम सामने आये हैं। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 18/12/1979 को महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार का भेदभाव समाप्त करने के समझौते को स्वीकार किया और यह 3/9/1981 से लागू हो गया।

संविधान के (73वाँ संशोधन) अधिनियम 1992, में व्यवस्था है कि पंचायती राज संस्थाओं के सभी तीन स्तरों पर सदस्यों और अध्यक्षों की कुल संख्या के कम से कम एक तिहाई पद महिलाओं के लिये आरक्षित होंगे। जिसे राजस्थान में 1980 के दशक में शुरू किया गया। *वूमेंस डेवलपमेंट प्रोग्राम* महिलाओं को संगठित और जाग्रत करने के प्रयासों में सफलता का एक प्रमुख उदाहरण है।

यद्यपि 73वें तथा 74वें संविधान द्वारा त्रिस्तरीय पंचायती ढांचे में स्त्रियों को मिले 33 प्रतिशत आरक्षण ने निश्चित रूप से ग्रामीण स्त्रियों को घर की चौखट से बाहर निकलने का मौका दिलाया है और गैर-सरकारी संस्था *हंगर प्रोजेक्ट*

के आंकड़ों के अनुसार पिछले 12 वर्षों में चुने गये कुल 30,99,432 पंचायत सदस्यों में 8,90,718 महिलायें थीं, जिनमें 80,000 तो सरपंच भी चुनी गईं लेकिन स्वभावतः स्त्रियों को पुरूषों से कमतर और कमजोर मानने वाला पुरूष इसे पचा नहीं पा रहा है। निष्कर्षतः पुरूष द्वारा सीढ़ी और हथियार के रूप में स्त्रियों का इस्तेमाल, शासन और सत्ता का सुख भोगने, अनेक अवसरों पर चरित्र हनन तथा अन्त में अवसर पाते ही अशिक्षागत अथवा चारित्रिक आरोपों द्वारा पद त्याग हेतु विवश करना आम बात है।

कुछेक महिलाओं की उपलब्धियों पर अपनी पीठ थपथपाते वाला देश पता नहीं कितनी प्रतिभाओं की अनदेखी कर चुका है और कर रहा है। वेतन तथा सांपत्तिक अधिकारों के विषय में भी कानूनी समानता के बावजूद सामाजिक रूप से अभी भी स्त्रियों को दोयम दर्जे का ही नागरिक समझा जाता है।

## स्रोत

डॉ0 एम0 एम0 लतानिया -भारतीय महिलाओं का समाजशास्त्र
एस0 एल0 दोषी -आधुनिक समानशास्त्रीय विचारक
डॉ0 गोपा जोशी -भारत में स्त्री असमानता ः एक विमर्श
जगदीश्वर चतुर्वेदी एवं सुधा सिंह -स्त्री अस्मिता
श्यामाचरण दुबे -भारतीय समाज
एस0 एन0 सिंह -आधुनिक समाजशास्त्रीय निबंध
एस0 एन0 दोषी एवं पी0 सी0 जैन -भारतीय समाज संरचना व परिवर्तन
सरोज चौबे -आधी जमीन; पत्रिका
संगीता तेज -सामाजिक मुद्दे
वूमेन इन इण्डिया : ए स्टैटिस्टीकल प्रोफाइल, 1988
डी0 डी0 बसु -भारत का संविधान
पंत, प्रदीप -भारतीय समाज और महिलाओं की स्थिति, कुरूक्षेत्र; सितम्बर 1990
मनोहर एवं सुजाता -कानून और लिंगभेद रहित न्याय, अगस्त 2001; योजना

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,72-75
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 19 दिसम्बर 2014

# सम्यक् ज्ञान में तर्क एवं आगम का अवदान-शंकर मत

डॉ. किरण कुमारी*

*लेखक का घोषणा-पत्र*

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *सम्यक् ज्ञान में तर्क एवं आगम का अवदान-शंकर मत* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *किरण कुमारी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सत्य ज्ञान की प्राप्ति के साधन के रूप में श्रुति या आगम को भारतीय दर्शन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। चार्वाक्, बौद्ध एवं जैन दर्शनों के अतिरिक्त प्रायः सभी भारतीय दार्शनिक सम्प्रदायों ने श्रुति-कथनों की सत्यता को शंका से सर्वथा परे माना है; लेकिन अद्वैत वेदान्त में इन्हें कुछ अधिक ही महत्व प्रदान किया गया है। प्रायः देखा जाता है कि शंकर तथा अन्य अद्वैत वेदान्ती यदि अपने किसी मत या सिद्धान्त के पक्ष में श्रुति या आगम को उद्धृत कर देते हैं तो उसे सर्वथा सत्य मानकर उसके पक्ष में किसी तर्क या युक्ति देने ही आवश्यकता नहीं महसूस करते हैं। डायसन की गणना के अनुसार शंकर ने सिर्फ 'ब्रह्मसूत्र भाष्य' में ही उपनिषदों से दो हजार से कम उद्धरण नहीं दिया है।[1] इनमें से 809 छान्दोग्य0 एवं 565 वृहदारण्यकोपनिषद् से है। आचार्य शंकर एवं अन्य अद्वैत वेदान्तियों के महत्वपूर्ण ग्रंथों में व्यापक रूप से प्राप्त ऐसे उद्धरणों को देखकर यह शंका होने लगती है कि क्या सचमुच इनके द्वारा तर्क एवं युक्ति की उपेक्षा तथा अवहेलना की गई है।

सत्य ज्ञान की प्राप्ति में श्रुति एवं तर्क की भूमिका के सम्बन्ध में शंकर के निश्चित मत तक पहुँचने में एक कठिनाई है। वस्तुतः श्रुति एवं तर्क के महत्व के सम्बन्ध में उन्होंने लगभग परस्पर विरोधी मतों का प्रतिपादन किया है। कहीं वे कुछ विषयों के प्रसंग में श्रुति या आगम को ही एकमात्र प्रमाण मानते हैं तो कहीं श्रुति-कथनों का भी तर्क-सम्मत होना आवश्यक बताते हैं। कहीं वे तर्क की निन्दा और भर्त्सना करते हैं तो कहीं स्तुति एवं प्रशंसा। शंकर के ये परस्पर विरोधी एवं असंगत लगने वाले कथन सत्य ज्ञान की प्राप्ति में श्रुति एवं तर्क की साधनता के सम्बन्ध में सूक्ष्म एवं गहन अध्ययन एवं अनुसंधान के लिये उत्प्रेरित करते हैं।

ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि अन्य अद्वैत वेदान्तियों को कौन कहे, स्वयं शंकर ने भी अपने मत को सिद्ध एवं सत्य सिर्फ इसलिये मान लिया है क्योंकि ये श्रुति-सम्मत है। उनके अनुसार ईश्वर अनेक आकार ग्रहण कर सकता है क्योंकि स्मृति कहती है कि आदित्य कुन्ती के पास पुरूष बनकर गया।[2] प्राणित्व समान होने

* अध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, डॉ. एस. के. सिन्हा महिला महाविद्यालय मोतिहारी (बिहार) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)



© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

पर भी मनुष्य से लेकर स्तम्भ पर्यन्त प्राणियों में ज्ञान, ऐश्वर्य आदि क्रमशः न्यूनतर अभिव्यक्त होते हैं, उसी प्रकार मनुष्य से लेकर हिरण्यगर्भ पर्यन्त ज्ञान, ऐश्वर्य आदि की अभिव्यक्ति उत्तरोत्तर अधिक होती जाती है। यह ऐसा तथ्य है जिसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि श्रुति तथा स्मृति के वचनों से यह बार-बार सुना जाता है।[3] हम जीव को परम आत्मा से भिन्न तथा उसकी सृष्टि नहीं मान सकते हैं क्योंकि श्रुति तेज आदि की उत्पत्ति का वर्णन करते समय जीव की सृष्टि का पृथक् उल्लेख नहीं करती।[4] इस आपत्ति के उत्तर में, कि जगत् या तो सम्पूर्ण ब्रह्म का परिणाम होता है या वह निरवयव नहीं होता है। शंकर ने बताया है कि उनके पक्ष में कोई दोष नहीं है क्योंकि सम्पूर्ण ब्रह्म का कार्यरूप में परिणाम श्रुतिसम्मत नहीं है। *यथैव हि ब्रह्मणो जगदुत्पत्ते श्रूयते* एवं *विकारव्यतिरेकेणापि ब्रह्मणोवस्थानं श्रूयन्ते।*[5] शंकर के उपर्युक्त कथन इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि उन्होंने श्रुतियों को अपने पक्ष में उद्धृत कर अनेक महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है और तर्क द्वारा उन्हें पुष्ट करने की आवश्यकता महसूस नहीं की है।

शंकर के अनुसार श्रुतियों के विरोधी तर्क दोषपूर्ण होते हैं। उन्होंने वैशेषिकों के इस सिद्धान्त कि, की आत्मा को इच्छा आदि होती है, आलोचना करते हुये कहा है कि उनके तर्क इसलिये गलत हैं क्योंकि वे वेद-विरोधी हैं।[6] शंकर ने बताया है कि श्रुतियों के अर्थ यद्यपि तर्क द्वारा खण्डित नहीं हो सकते हैं, फिर भी कभी-कभी श्रुति-कथन व्यावहारिक अनुभव के अनुकूल नहीं होते हैं; जैसे श्रुतियों का यह कथन कि ब्रह्म जगत् का उपादान एवं निमित्त दोनों कारण है- अनुभव के अनुकूल नहीं हैं। हमें कभी भी एक ही चीज उपादान एवं निमित्त कारणों के रूप में अनुभूत नहीं होती है। शंकर के अनुसार हमें याद रखना चाहिये कि ये विषय ऐसे हैं जो तर्क अर्थात् अनुमान के अन्तर्गत नहीं पड़ते हैं।[7] उसी प्रकार, शंकर के अनुसार तर्क द्वारा ईश्वर तथा जगत् के सम्बन्ध की सन्तोषप्रद व्याख्या नहीं की जा सकती है, इसलिये वेदान्ती लोग अनुभव की सभी बातों को स्वीकार नहीं कर सकते हैं।

वाचस्पति मिश्र ने इस प्रसंग में कहा है कि आगम ऐसे विषयों के भी ज्ञान प्रदान करते हैं जिनका कभी भी इन्द्रियानुभव नहीं होता है तथा जो प्रत्यक्ष के प्रतिकूल भी होते हैं। अप्पय दीक्षित के अनुसार अनुमान श्रुति-कथनों का खण्डन नहीं कर सकता है, ठीक वैसे ही जैसे नेत्र; जो सुन नहीं सकता है, हमारे श्रौत अनुभव का खण्डन नहीं कर सकता है। उनके अनुसार तलवार की तेज धार जिस तरह से चट्टान पर पड़ने से मुड़ जाती है उसी प्रकार जब अनुभव आगम की आलोचना करता है तो अप्रभावी हो जाता है। यह कहना कि तर्क या अनुमान आगम से अधिक सबल होता है, अनुचित वीरता प्रदर्शित करना *(अस्था न विजृम्मतम्)* है। स्पष्ट है कि अद्वैत वेदान्ती कुछ विषयों के ज्ञान के लिये आगम को ही एकमात्र प्रमाण मानते हैं। इनके अनुसार इन विषयों के ज्ञान में तर्क की कोई भी गति नहीं है।

शंकर ने *ब्रह्मसूत्र 2.1.11* के अपने भाष्य में यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति में तर्क की अक्षमता सिद्ध करने के लिये कई युक्तियाँ प्रदान की है। उनके अनुसार सम्यक् ज्ञान में मतवैभिन्न असम्भव है; लेकिन तर्क पर आधारित ज्ञान एक-दूसरे का खण्डन करते हुये दिखाई पड़ते हैं। मनुष्य के तर्क सर्वथा निरंकुश होते हैं। एक तार्किक के निष्कर्ष दूसरे तथा दूसरे के तीसरे द्वारा खण्डित कर दिये जाते हैं। यही कारण है कि कपिल तथा कणाद जैसे मान्य विद्वान भी एक-दूसरे के मतों का खण्डन करते हुये पाये जाते हैं। अतः व्यक्तियों के मतों की विभिन्नता के कारण (*पुरूषमति वैरूप्यात्)* तर्क को निश्चित आधार सम्पन्न नहीं माना जा सकता है।

शंकर के अनुसार धर्म, ब्रह्म आदि कुछ विषयों का ज्ञान श्रुति-भिन्न प्रमाण से सम्भव नहीं है। ब्रह्म के रूपादि से रहित होने के कारण इसका प्रत्यक्ष ज्ञान सम्भव नहीं है। उसी प्रकार ब्रह्म के सम्बन्ध में व्याप्ति ज्ञान के अभाव में इसे अनुमान द्वारा भी नहीं जाना जा सकता है। अतः ब्रह्म आदि का ज्ञान के सम्बन्ध में तर्क प्रामाणिक ज्ञान नहीं दे सकता है।

वस्तुतः तर्क द्वारा प्राप्त ज्ञान में गहरा मतवैभिन्न पाया जाता है; जैसे तर्क द्वारा सांख्य प्रधान को तथा नैयायिक परमाणुओं को जगत् का कारण बताते हैं। इनमें से किसे स्वीकार किया जाये ? अतः तर्क द्वारा सम्यक् ज्ञान, जो मोक्ष-प्राप्ति के लिये आवश्यक है, प्राप्त नहीं हो सकता है। अतः तर्क द्वारा मोक्ष की प्राप्ति नहीं, सकती है। *सम्यग्ज्ञानत्वानुपपत्ते संसारा विमोक्ष एव प्रसज्यैत्।*[8]

तर्क द्वारा प्रतिपादित निष्कर्ष के सम्बन्ध में प्राप्त वैभिन्न को दूर करने के लिये हम यह भी नहीं कह सकते हैं कि एक मताविशेष ही, जैसे सांख्य मत ही, सर्वश्रेष्ठ है इसे सबों को स्वीकार कर लेना चाहिये।

अन्ततः शंकर के अनुसार, यह भी सम्भव नहीं है कि भूत, वर्तमान एवं भविष्य के सभी तार्किकों को एक विशेष देश एवं काल में एकत्र कर उनके मतवैभिन्न को दूर किया जाये जिससे कि उनकी मति एकरूप और एकार्थविषयक होकर सम्यक् ज्ञान बने।

शंकर ने तर्क की सिर्फ निन्दा ही नहीं की है अपितु इसकी जमकर स्तुति एवं प्रशंसा भी की है। वे विरोधियों के इस तर्क को स्वीकार करते हैं कि यह कथन कि *तर्क अप्रतिष्ठित* है, स्वयं तर्क द्वारा ही प्रतिपादित होता है और वे यह भी मानते हैं कि यदि सभी तर्क अप्रतिष्ठित या निराधार ही हों, तो लोक व्यवहार का उच्छेद हो जायेगा। *सर्वतर्काप्रतिष्ठायां च लोकव्यवहारोच्छेदप्रसंगः।*[9] शंकर श्रुतियों के यथार्थ अर्थ के निर्धारण में तर्क की उपयोगिता को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार सांख्य, कणाद एवं बुद्ध के अनुयायियों की कल्पनायें इसलिये अनादरणीय हैं क्योंकि वे शास्त्र एवं युक्ति विहीन है। *सांख्य-कणाद-बौद्धानां मीमांसाहत कल्पनाः,/ शास्त्र-युक्ति-विहीनत्वान्नार्दतव्या कदाचन।*[10] गौड़पादकारिका भाष्य में शंकर ने बताया है कि अद्वैत के सत्य की स्थापना बिना आगम की सहायता के सिर्फ तर्क द्वारा भी हो सकती है। *अद्वैतं किमागममात्रेण प्रतिपत्तव्यं.....शक्यते तर्केणापि ज्ञातुम्।*[11] कठ-भाष्य में शंकर ने बताया है कि सत् असत् के हमारे ज्ञान में बुद्धि ही हमारा प्रमाण होती है। *बुद्धिर्हि नः प्रमाणंसदसतोर्याथात्म्यावगमे*[12]

शंकर ने यह भी कहा है कि हमें श्रुतियों का अंध भक्त नहीं होना चाहिये। यदि दो श्रुति-कथनों में विरोध हो तो हमें तर्क के निष्कर्ष को स्वीकार कर लेना चाहिये क्योंकि तर्क अनुभव के करीब होता है। *युक्तिरनुभवस्य संनिकृष्यते*[13]

अद्वैत वेदान्त के अनुसार तर्क एवं युक्ति के कुछ निषेधात्मक कार्य भी होते हैं। चार्वाक, सांख्य, योग आदि अनेक ऐसे सम्प्रदाय हैं जो यथार्थ ज्ञान देने का दावा करते है। इनमें से कुछ सम्प्रदायों के साथ कपिल, कणाद जैसे प्रसिद्ध एवं सर्वज्ञ विद्वान सम्बद्ध हैं। इनमें सूक्ष्म, युक्तियों का प्रयोग हुआ है। अतः कुछ व्यक्ति यह मानने लगते हैं कि ये सम्प्रदाय भी वेदान्त के समान ही है तथा समान शक्ति के दो सिंहों के समान, जो एक दूसरे को पराजित नहीं कर सकते हैं, वैध तथा सत्य हैं।[14] ऐसे व्यक्तियों को यह समभाना आवश्यक होता है कि सांख्य आदि सम्प्रदाय परस्पर असंगत तथा आत्मविरोधी हैं। ऐसा करना स्वतंत्र युक्तियों द्वारा ही सम्भव है।

तर्क एक अन्य खतरे का भी निराकरण करता है। अन्य दार्शनिक सम्प्रदाय भी वेद-वाक्यों को अपने सिद्धान्तों के समर्थन एवं उनकी पुष्टि में प्रयोग करते हैं। वे उन कथनों की इस प्रकार से व्याख्या करते है कि वे उनके उद्देश्य की पूर्ति करते हुये प्रतीत होते हैं। शंकर के अनुसार ऐसी व्याख्यायें भ्रामक होती हैं। वस्तुतः ये व्याख्याभास होती हैं, सम्यग्व्याख्या नहीं।[15] तर्क इन व्याख्याभासों का निराकरण करता है।

### *शुष्क तर्क एवं सुतर्क*

शंकर के उपर्युक्त तर्क- विरोधी युक्तियों के कारण यह समभने का भ्रम हो सकता है कि उन्होंने सभी प्रकार के तर्कों की उपादेयता को सर्वथा अस्वीकार कर दिया है। इन्हीं के कारण कुछ विद्वानों ने शंकर को सर्वथा बुद्धि-विरोधी कहकर उनकी आलोचना भी की है। वस्तुतः उन्होंने सभी प्रकार के तर्कों को अस्वीकार नहीं किया है। उनके अनुसार तर्क दो प्रकार के होते हैं- शुष्क तर्क या कुतर्क तथा सुतर्क। मात्र तर्क के लिये तर्क करना शुष्क तर्क है। इससे संशयवाद की उत्पत्ति होती है। अतः शंकर ऐसे तर्कों के विरोधी हैं। इनके विपरीत सुतर्क वे हैं जो श्रुतियों पर आधारित तथा जिनसे इनके सम्बन्ध में उत्पन्न संशयों का निराकरण किया जाता है। अतः शंकर के अनुसार ऐसे तर्क जो श्रुतियों के अर्थ समभने में सहायक हों, श्रेष्ठ तथा उपयोगी हैं। इसलिये बृहदरण्यकोपनिषद् में आत्मा को श्रोतव्य, मन्तव्य तथा निदिध्यासितव्य कहा गया है। अतः शंकर ने वेसे तर्कों को जो श्रुतियों का अर्थ स्पष्ट करने में सहायक होते हैं, स्वीकार किया है। शंकर ने कहा है *श्रुत्यैव सहायत्वेन तर्कस्याभ्युपेतत्वात्।*[16]

ऊपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि शंकर एवं अन्य अद्वैत वेदान्ती तर्कसम्मत श्रुति एवं श्रुतिसम्मत तर्क में से श्रुतिसम्मत तर्क को ही सम्यक् ज्ञान का साधन मानने के पक्षधर हैं। सुतर्क की व्याख्या करते हुये वाचस्पति मिश्र ने बताया है कि तर्कों में तीन गुण होने चाहिये- 1. आगमप्रमाणाश्रय अर्थात् श्रुतिसम्मत होना। 2. श्रुतियों के विषयों का विवेचक होना

तथा 3. श्रुतियों का अविरोधी या समर्थक होना।[17] फिर भी डायसन ने कहा है कि वस्तुतः शंकर ने तर्क का प्रयोग अपने तर्कविरोधी विचारों से अधिक किया है।[18] ए0 सी0 मुखर्जी के अनुसार शंकर ने सभी प्रकार के तर्कों का विरोध नहीं किया है। उन्होंने सिर्फ शुष्क तर्क या कुतर्क का विरोध किया है क्योंकि इसके माध्यम से किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता है।[19] वैसे यह ठीक है कि शंकर ने सभी प्रकार के तर्कों का विरोध नहीं किया है; लेकिन यह भी सत्य है कि कुछ विषयों के प्रसंग में उन्होंने आगम या श्रुति को ही एकमात्र प्रमाण माना है। क्या अद्वैत वेदान्तियों की यह मान्यता उचित है ?

समकालीन पाश्चात्य दर्शन का उद्गम आगमों या अथार्टी के विरोध एवं तर्क के समर्थन में हुआ है। आज के वैज्ञानिक परिवेश में किसी भी मत को आगम या अथार्टी द्वारा सिद्ध करने का प्रयास प्रायः लोगों को निन्दनीय एवं उपहासास्पद लग सकता है। आज ज्ञान के क्षेत्र में तर्क एवं युक्ति को प्रमुख स्थान प्राप्त है। अतः आधुनिक मनीषा को अद्वैत वेदान्तियों का श्रुति पर इतना अधिक बल देना अरूचिकर एवं उपेक्षणीय लग सकता है।

## स्रोत

[1]*फिलासफी ऑफ द उपनिषिदास,* पृष्ठ संख्या 30
[2]शंकर- ब्रह्मसूत्र भाष्य, 1.3.30
[3]*श्रुतिस्मृतिवादेष्वसकृदनुश्रूयमाणं न शक्यं नास्तीति वदितुम्।* शंकर- ब्रह्मसूत्र भाष्य 1.3.30
[4]शंकर- ब्रह्मसूत्र भाष्य, 1.4.22
[5]वही, 2.1.27
[6]*माण्डुक्योपनिषद्,*भाष्य- उपोद्घात
[7]*वृहदारण्यकोपनिषद्,* भाष्य- 11.1
[8]शंकर- ब्रह्मसूत्र भाष्य, 2.1.11
[9]शारीरक भाष्य, 2.1.11
[10]*उपदेशसाहस्री,* 16, 64-65
[11]*गौड़पाद कारिका,* 3.1
[12]*कठोपनिषद्,* भाष्य- 4.12
[13]शंकर- शारीरक भाष्य, 2.1.4
[14]वाचस्पति मिश्र- *भामती,* 2, 2.1
[15]*ब्रह्मसूत्र,* भाष्य- 2.2.1
[16]वही, 1.1.2
[17]भामती, 11.1.16
[18]द सिस्टम ऑफ वेदान्त, पृष्ठ संख्या 96
[19]द नेचर ऑफ सेल्फ, पृष्ठ संख्या 346

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9,76-80**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 22 दिसम्बर 2014

# श्रीहर्ष की ऐतिहासिकता : एक विश्लेषण

डॉ. अर्चना शर्मा*

*लेखक का घोषणा-पत्र*

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *श्रीहर्ष की ऐतिहासिकता : एक विश्लेषण* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अर्चना शर्मा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

श्रीहर्ष पूर्व मध्यकाल के एक महान कवि थे। उनकी प्रसिद्धि उनके दो उपलब्ध ग्रंथों नैषधीयचरित एवं खण्डनखण्डखाद्य के कारण विशेष रूप से है। नैषधीयचरित संस्कृत साहित्य का एक उत्कृष्ट महाकाव्य तथा खण्डनखण्डखाद्य दर्शन के गूढ़ सिद्धान्तों का प्रतिपादक ग्रन्थ है। इतने मूर्धन्य कवि श्रीहर्ष के जीवन से सम्बन्धित अनेक तथ्यों पर विद्वानों में विवाद है। मेरे प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य श्रीहर्ष के जीवन को वृत्तान्त के समान प्रस्तुत करना है ताकि हम श्रीहर्ष के विषय में जान सकें तथा श्रीहर्ष की ऐतिहासिकता सम्बन्धी समस्या को पहचान सकें।

सर्वप्रथम मैं उन तथ्यों को उद्घाटित करना चाहूँगी जिनका उल्लेख स्वयं श्रीहर्ष ने अपने ग्रंथ नैषधीयचरित में किया है। इस ग्रंथ में कवि का नाम श्रीहर्ष प्राप्त होता है, जिनके पिता श्रीहीर थे, जो कविराज समूह के मुकुट के अलंकार 'हीरक' के तुल्य थे तथा माता मामल्लदेवी थीं[1]- ''श्रीहर्ष कविराज- राजामुकुटालंकारहीरः सुतं श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियेचयं मामल्लदेवी च यम्।''

श्रीहर्ष ने अनेक विद्याओं (चौदह) का अध्ययन किया था तथा चिन्तामणि मंत्र के अनुध्यान जपादि के फलस्वरूप नैषधीयचरित महाकाव्य की रचना किया था।[2] नैषधीयचरित 22 सर्गों में उपलब्ध है। इन 22 सर्गों में से कुछ में श्रीहर्ष अपनी कुछ अन्य कृतियों- (1) स्थैर्यविचारण[3] (2) श्रीविजयप्रशस्ति[4] (3) खण्डनखण्डखाद्य[5] (4) गौडोर्वीशकुलप्रशस्तिभणिति[6] (5) अर्णव वर्णन[7] (6) छिन्दप्रशस्ति[8] (7) शिवशक्तिसिद्धि[9] (8) नवसाहसांकचम्पू[10] पर प्रकाश डालते हैं। इसके अतिरिक्त खण्डनखण्डखाद्य में उनके एक ग्रंथ (9) ईश्वराभिसन्धि का उल्लेख प्राप्त होता है तथा संस्कृत साहित्य के अन्य विद्वानों द्वारा उनके दो अन्य ग्रंथों का उल्लेख प्राप्त होता है- (10) पञ्चनलीय (11) द्विरूपकोष।[11] लेकिन ये ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं हैं। अतः नैषध एवं खण्डन-खण्डखाद्य के आधार पर श्रीहर्ष साहित्यशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र के मूर्धन्य विद्वान प्रतीत होते हैं। साथ ही नैषधचरित ग्रंथ से यह

* असिस्टेंट प्रोफेसर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)



© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

भी स्पष्ट हो जाता है कि उनकी अद्भुत विद्वत्ता का सम्मान कान्यकुब्ज नरेश दो पान और आसन आदान कर करते थे-[12] ''ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्।''

नैषध में श्रीहर्ष ने जो सूचनाएँ स्वयं के विषय में दिया है इनमें से अनेक तथ्यों का उल्लेख जैन कवि राजशेखर सूरि जिनका समय लगभग 15वीं शताब्दी (वि0सं0 1405) है, में अपने ग्रंथ ''प्रबन्धकोश''[13] में किया है। श्रीहर्ष के पिता का नाम श्री हीर इस ग्रंथ में भी उपलब्ध होता है तथा इनके आश्रयदाता कान्यकुब्ज नरेश का नाम जयन्तचन्द्र ज्ञात होता है। जिनकी पहचान विद्वानों ने गाहड़वाल नरेश जयचन्द के साथ किया है। इसके अतिरिक्त राजशेखर ने यह भी बतलाया है कि श्रीहर्ष को कश्मीर के राजा माधवदेव तथा इनके नैषध को वहाँ के पण्डितों का आदर विशेष रूप से प्राप्त हुआ था।[14] श्रीहर्ष के जीवनचरित्र से कुछ सूचनाएँ नैषध के प्रसिद्ध टीकाकार चाण्डू पण्डित ने अपनी कृति ''नैषधदीपिका'' में दी है। चाण्डूपण्डित का काल राजशेखर से पूर्व (लगभग वि0सं0 1353 (1296 ईसवी)) माना जाता है। चाण्डूपण्डित एक नई सूचना देते हैं कि राजसभा में श्रीहर्ष के पिता को पराजित करने वाले और श्रीहर्ष से पराजित होने वाले पण्डित का नाम उदयन था।[15] नैषध एवं प्रबन्धकोश- दोनों ग्रंथों में पराजित कवि (उदयन) का नाम नहीं प्राप्त होता। यह उदयन कौन था? इसे लेकर भी विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान इन्हें ''न्यायकुसुमाञ्जलि'' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ के लेखक उदयन मानते हैं। किन्तु इस उदयन का काल नवीं-दसवीं शताब्दी था।

इस प्रकार जयन्तचन्द्र (गाहड़वाल राजा जयच्चन्द्र) तथा उदयन के उल्लेखों के कारण श्रीहर्ष का कालनिर्णय अत्यन्त विवादित हो जाता है। श्री हर्ष को ईसा की नवीं-दसवीं शताब्दी में रखते हैं जिनका मुख्य आधार है न्यायकुसुमाञ्जलि का लेखक उदयनाचार्य जिसे वह उदयन के साथ समीकृत करते हैं। दूसरा मत प्रो0 एफ0एस0 ग्राउस का है इन्होंने चन्द (चन्दवरदाई) कवि के ''पृथ्वीराजरासो'' को आधार मानते हुए कहा है कि चंद 12वीं शती ईसवी के अन्तिम भाग में हुए थे अतः यदि राजशेखर का कथन ठीक है तो श्रीहर्ष और चन्द समकालीन हुए। परन्तु चन्द ने अपने पूर्वजातों का उल्लेख के क्रम में नलचरित प्रणेता श्रीहर्ष को कालिदास के पूर्व माना है। किन्तु रासो के उस खण्ड पर टिप्पणी करते हुए प्राच्यविद बूलर उसे पूर्णतः अविश्वसनीय मानते हैं तथा ग्राउस जिसे क्रम कहते हैं उसे क्रम भी नहीं मानते।[16] बूलर ने अनेक प्रमाणों के आधार पर श्रीहर्ष का समय 12वीं शताब्दी सिद्ध किया है। उनका (बूलर) एक लेख रायल एशियाटिक सोसाइटी बम्बई द्वारा 1875 ईसवी में प्रकाशित एक ग्रंथ में छपा। इससे पूर्व उन्होंने एक पत्र एशियाटिक सोसाइटी की एक सभा में पढ़ा था जो 'इण्डियन एंटीक्वेरी' नामक जर्नल में छपा तथा इन पत्रों में उन्होंने श्रीहर्ष को बारहवीं शताब्दी से पूर्व मानने के सुझावों का खण्डन किया। उन्होंने राजशेखर के प्रबंधकोश को मान्यता देते हुए यह सिद्ध किया कि श्रीहर्ष बारहवीं शताब्दी ईसवी के उत्तरार्द्ध में हुए थे। उनके अनुसार 'नैषधीयचरित' की रचना ई0 1163-1174 के मध्य हुई होगी।[17]

श्रीहर्ष के काल सम्बन्धी विवाद के पश्चात् उन किंवदन्तियों का उल्लेख भी आवश्यक है जो उनके जीवन से संबंधित है। यथा श्रीहर्ष राजा गोविन्दचन्द्र की सभा में अत्यन्त सम्मानित थे जिससे अन्य कवि पण्डित जलते थे और उनके तर्कशास्त्र के ग्रन्थ खण्डनखण्डखाद्य की रचना पर उन्हें ''तर्कशमीवृक्षपरिपूर्ण-शुष्क मरु'' कहकर उनका उपहास करने लगे। तब उन्होंने नैषधीयचरित (नलचरित) लिखकर राजा को भेंट किया और राजा ने उन्हें ताम्बूलद्वय और आसन आदान किया। कश्मीर के पण्डितों में एक किवदन्ति यह आचलित है कि श्रीहर्ष ''काव्यप्रकाश'' के रचनाकार मम्मट के भागिनेय थे। जब श्रीहर्ष ने अपना महाकाव्य मम्मट को दिखाया तो मामा मम्मट ने काव्य को देखकर कहा कि यदि यह रचना काव्यप्रकाश से पूर्व प्राप्त हो जाता तो 'दोष परिच्छेद' रचना में इतनी कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता, सब दोषों के उदाहरण इसी काव्य में प्राप्त हो जाते।[18] इस प्रकार की और भी किंवदन्तियाँ श्रीहर्ष के जीवन के विषय में कही जाती है।

श्रीहर्ष के जीवन के विषय में उनके स्वयं के महाकाव्य, अन्य कवियों के ग्रंथों तथा किवदन्तियों से भी जो सूचना मिलती है उससे उनकी जन्मभूमि एवं निवासभूमि के विषय में निश्चित जानकारी नहीं मिलती है। इसीलिए विद्वानों में इस समस्या को लेकर चार प्रकार के मत हैं[19]- (1) श्रीहर्ष कश्मीर के थे। (2) बंगाल के थे। (3) काशी के थे। (4) कन्नौज के थे।

श्रीहर्ष कश्मीर के थे इसके प्रमाण स्वरूप नैषधीयचरित के सोलहवें सर्ग की उक्ति- 'काश्मीरैर्महिते चतुर्दशतयीं विद्यां विदद्भिः' को माना जाता है अर्थात् चतुर्दशविद्याओं के ज्ञाता काश्मीरी पण्डितों से सम्मानित। किन्तु इससे उनका काश्मीर होना सिद्ध नहीं होता और मम्मट वाली था तो नितान्त किंवदन्ती है। बंगाल विषय मतवाद के लिए विद्वान कई आधार प्रस्तुत करते

हैं यथा गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति तथा नवसाहसांकचरित में गौड़ देश के राजाओं की प्रशस्ति की संभावना (क्योंकि दोनों ग्रंथ अनु-पलब्ध हैं) है। जैनकवि राजशेखर ने प्रबन्धकोश के हरिहरप्रबन्ध[20] में श्रीहर्ष के वंशज हरिहर को गौडदेशवासी बताया है। मैथिल कवि विद्यापति ने नलचरित के कर्ता श्रीहर्ष को गौड़देशीय बताया है तथा लिखा है कि ये नलचरित की रचना करके काशी चले गये। कुछ विद्वानों ने भाषात्मक समानता, बंगाल की कुछ परम्पराओं, रीति-रिवाजों आदि के आधार पर भी श्रीहर्ष को बंगाल का माना है। उदाहरणार्थ- नलदमयन्ती के विवाह के अवसर पर उलूलु ध्वनि, दमयन्ती द्वारा शंखवलय को धारण करना आदि। कुछ विद्वान 'चिन्तामणि' मन्त्र साधना के आधार पर श्रीहर्ष को बंगालवासी सिद्ध करते हैं। किन्तु इन सभी मतों का खण्डन विद्वानों ने अनेक तर्कों के आधार पर किया है। स्वयं राजशेखर के उल्लेखों पर ध्यान दें तो उन्होंने श्रीहर्ष के वंशज हरिहर को तो गौड़देशीय माना है किन्तु श्रीहर्ष के जीवन का अधिकांश भाग काशी कन्नौज में व्यतीत हुआ इसकी चर्चा भी किया है।

काश्मीर और बंगाल सम्बन्धी मतवादों की मीमांसा के पश्चात् काशी और कन्नौज का सन्दर्भ और अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। श्रीहर्ष ने अपने महाकाव्य में स्वयं को कान्यकुब्ज नरेश द्वारा सम्मानित बताया है और राजशेखर ने कान्यकुब्ज नरेश का नामोल्लेख जयन्तचन्द्र किया है। जिसकी पहचान विद्वानों ने गाहड़वाल शासक के साथ की है। ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में गाहड़वाल उत्तर भारत की एक महत्त्वपूर्ण सत्ता के रूप में उभरते हैं। गाहड़वाल वंश के इतिहास को जानने हेतु इस वंश के राजाओं के लेख प्राप्त होते हैं। लेखों में जयन्तचन्द्र नामक किसी राजा का उल्लेख नहीं है। बल्कि जयच्चन्द्र नामक राजा का लेखों में उल्लेख मिलता है[21]- जो गोविन्दचन्द्र का पौत्र तथा विजयचन्द्र का पुत्र था। इसी जयच्चन्द्र से जयन्तचन्द्र की पहचान की जाती है। कान्यकुब्ज गाहड़वालों की राजधानी और काशी गाहड़वाल काल में एक प्रमुख केन्द्र था।[22] इस काल में भारत के प्रमुख राजनीतिक केन्द्र मुस्लिम आक्रमणों से आक्रान्त थे। काशी को इन आक्रमणों से गोविन्दचन्द्र गाहड़वाल ने सुरक्षित किया था। कुमारदेवी के सारनाथ अभिलेख से इसकी सूचना प्राप्त होती है।[23]

किन्तु यहाँ प्रश्न यह उठता है कि समस्त विद्वान इस तथ्य का विश्लेषण करते हैं कि श्रीहर्ष कान्यकुब्ज के थे क्योंकि उन्हें कान्यकुब्ज नरेश ने सम्मानित किया था लेकिन उनका अगाध ओम काशी से था। वह जब नैषध की रचना कर रहे थे उस समय तक काशी गाहड़वालों की द्वितीय राजधानी की प्रशासनिक केन्द्र बन चुकी थी। लेखों में जयच्चन्द्र को ''काशीश'' भी कहा गया है। ऐसे में उन्होंने गाहड़वाल राजा को काशीश न कह कर कान्यकुब्जेश्वर कहना क्यों उचित समझा होगा? ऐतिहासिक विश्लेषण करने पर यह तथ्य सामने आता है कि उस युग की राजनीतिक परिस्थितियाँ तेजी से बदल रही थीं। बोधगया लेख में (1183-1192) में जयच्चन्द्र को काशीश और सैकड़ों राजाओं द्वारा सेवित कहा गया है किन्तु लक्ष्मण सेन के लेख में लक्ष्मणसेन को काशीराज को हराने बनारस और प्रयाग में विजयस्तंभ की स्थापना का उल्लेख आर0सी0 मजूमदार जैसे अनेक विद्वानों ने किया है। ऐसा लगता है कि कुछ समय के लिए काशी से पर गाहड़वालों का आधिपत्य छीन गया था, और कान्यकुब्ज ही उनके अधिकार में रह गया था इसीलिए श्रीहर्ष काशी कान्यकुब्ज के राजा के लिए केवल कान्यकुब्जेश्वरात् विशेष प्राप्त होती है।[24]

उपर्युक्त प्रमाण गाहड़वाल कालीन राजनीतिक परिदृश्य में काशी और कान्यकुब्ज के महत्त्व को तो बताते हैं किन्तु श्रीहर्ष के निवास से संबंधित समस्या को अधिक स्पष्ट नहीं कर पाते। इस संदर्भ में जयच्चन्द्र के एक अभिलेख का मैं उल्लेख करना चाहूँगी जिसका मूल्यांकन हर्ष की ऐतिहासिकता के संदर्भ में अभी तक विद्वानों द्वारा नहीं किया गया है। यह लेख है खाम्भमऊ लेख जो वाराणसी परिक्षेत्र से प्राप्त हुआ है।[25] इस लेख की तिथि है वि0सं0 1231 तथा उत्कीर्णक सोमेक है। अभिलेख परम-भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर जयच्चन्द्रदेव द्वारा कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि तुला पुरुषदान करने का उल्लेख है। इस लेख में यह भी उल्लेख है कि इस महादान से पूर्व राजा ने काशी में गंगा स्नान किया तथा भगवान कृतिवासस के समक्ष यह महादान सम्पन्न किया। इस अवसर पर उसने वजैहाच्छासढि पट्टला के खाम्भमऊ नामक ग्राम का दान नौ ब्राह्मणों को प्रदान किया ग्रामदान का आधा भाग मुख्य पुरोहित (ब्राह्मण) प्रहराज को दिया गया शेष आधा भाग अन्य आठ ब्राह्मणों को। अभिलेख में इन ब्राह्मणों के नाम और आस्पद भी प्राप्त होते हैं- द्विवेद विश्वामित्र, द्विवेद माधव, द्विवेद रामू, दीक्षित श्रीहर्ष, त्रिपाठी कुलधर, त्रिपाठी वंशधर, दीक्षित सहारण के पुत्र सेवादित्य तथा द्विवेद महेश्वर। इस लेख में दीक्षित श्रीहर्ष का नामोल्लेख ध्यातव्य है। सम्पूर्ण दानपत्र से ऐसा प्रतीत होता है कि आहराज महत्त्वपूर्ण पण्डित थे, संभवतः वह गाहड़वालों के राजपुरोहित थे, क्योंकि

दान का आधा भाग उन्हें प्राप्त हो रहा है। अन्य लेखों में भी उनका उल्लेख प्राप्त होता है। अन्य पण्डितों को उनकी तुलना में कम अंश प्राप्त हुआ किन्तु यह इतना तो रहा ही होगा कि वह अपनी जीविका सुगमतापूर्वक चला सकें। श्रीहर्ष भी एक प्रतिग्रहीता थे साथ ही वह कान्यकुब्जेश्वरात (काशी-कान्यकुब्ज के राजा जयच्चन्द्र) से सम्मान प्राप्त भी थे ऐसी स्थिति में काशी में उनके निवास हेतु यह दानोल्लेख महत्त्वपूर्ण है। काशी से उनके इस सम्बन्ध का संकेत नैषधीयचरित में भी प्राप्त होता है। इन्द्र नल को वरदान देते हैं- ''राजन् तुम्हारे निवास के लिए वाराणसी के समीप असी नदी के पार तुम्हारे नाम की नगरी होगी। अर्थात् नल काशी परिक्षेत्र का निवासी बनता है। असी के पार नरोत्तमपुर, नरिया (नलपुर) तथा नैषढा (नैषापुर) तीन गाँव आज भी है। विद्वान् इन्हीं में से एक को श्रीहर्ष का निवास क्षेत्र का संकेत मानते हैं।[26]

समस्त विश्लेषण के आधार पर खाम्भमऊ लेख के दीक्षित श्रीहर्ष को कवि श्रीहर्ष से समीकृत करने का सुझाव दिया जा सकता है और कहा जा सकता है कि श्रीहर्ष की जन्मभूमि कहीं भी रही हो उनकी कर्मभूमि काशी थी और ग्रामदान के प्रतिग्रहीता के रूप में वे काशी के वासी भी थे।

## संदर्भ

[1]*शास्त्री, देवर्षि सनाढ्य (हिन्दी-व्याख्याकार),* महाकवि श्रीहर्ष विरचितं नैषधीयचरितम्, महोपाध्यायमल्लिनाथकृत 'जीवातु' टीका सहित, वाराणसी, पुनर्मुद्रित, वि0सं0 2061, सन् 2013, भूमिका पृ0 8; उपाध्याय, आचार्य बलदेव, संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाराणसी, 1978, पृ0 226

[2]*नैषधीयचरितम्* 1/145 तच्चिन्तामणि, मन्त्रचिन्तनफले।

[3]*पूर्वोक्त,* 4/123, स्थैर्य-विचारण-प्रकरण-भ्रातरि-महाकाव्ये।

[4]*पूर्वोक्त,* 5/138, तस्य श्रीविजयप्रशस्तिरचना तातस्य (कवे) नव्ये महाकाव्ये।

[5]*पूर्वोक्त,* 6/113, खण्डन-खण्डतोपि सहजात् क्षोदक्षमे महाकाव्ये।

[6]*पूर्वोक्त,* 7/110, गौडोर्वीशकुल-प्रशस्ति-भाणितिभ्रातरि-महाकाव्ये।

[7]*पूर्वोक्त,* 9/160, सन्दृब्धार्णववर्णनस्य तस्य (कवे) महाकाव्ये।

[8]*पूर्वोक्त,* 17/122, स्वसुः सुसदृशिच्छिन्दप्रशस्तेर्महाकाव्ये।

[9]*पूर्वोक्त,* 17/154, अस्मिन् शिवशक्तिसिद्धिभगिनी सौभ्रात्रभव्ये महाकाव्ये।

[10]*पूर्वोक्त,* 22/151, नवसाहसांकचरिते चम्पूकृतः (तस्य कवेः) (महाकाव्ये)।

[11]शास्त्री, देवर्षि सनाढ्य, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ0 25-26

[12]नैषधीयचरित, 22/153

[13]प्रबन्धकोश (11वां हर्षकवि प्रबन्ध), सिंधी जैन ग्रंथमाला ग्रन्थांक 6, 1935, पृ0 54-58

[14]शुक्ल, चन्द्रिका प्रसाद- नैषध परिशीलन, इलाहाबाद, 2000, पृ0 4; किन्तु राजतरंगिणी में कान्यकुब्जेश्वर जयन्तचन्द्र का समकालीन कोई माधवदेव नामक नृप नहीं वर्णित है। संभवतः यह कोई आश्रित सामन्तनरेश था।

[15]*पूर्वोक्त,* पृ0 5

[16]शास्त्री, देवर्षि सनाढ्य, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ0 16-19

[17]*पूर्वोक्त,* पृ0 19

[18]*पूर्वोक्त,* पृ0 14-15

[19]*पूर्वोक्त,* पृ0 19-23

[20]राजशेखर -प्रबन्धकोश (हरिहरप्रबन्ध), पृ0 58-61

[21]नियोगी, रोमा- दी हिस्ट्री ऑव दी गाहड़वाल डायनस्टि, कलकत्ता, 1959, पृ0 102-107, 255-258

[22]वही, पृ0 239-242, .....A comparative study of all the available evidences, thus, clearly indicates that, though the empire over which the Gahadavalas ruled, was traditionally known as the empire of Kanyakubja, it was the city of Varanasi which served as the administrative centre for the greater part of their rule.

[23]वाराणसी भुवनरक्षणदक्षएको दुष्टान्तुरुष्क सुभटादवितृं हरेण। उक्तो हरिस्स पुनत्रव (ब) भूव तस्माद्गोविन्दचन्द्र इति प्रथिताभिधानः। एपिग्राफिया इंडिका, जिल्द, 9, पृ0 324; वर्मा, टी0पी0 एवं सिंह, ए0के0 इन्'स्क्रिप्शन ऑव दी गाहड़वालाज एण्ड देअर टाइम्स, दो भागों में, नई दिल्ली, 2011, पृ0 647

[24]पाठक, विशुद्धानन्द- उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1973, चतुर्थ संस्करण, 1990, पृ0 366

[25]कीलहर्न, एफ- एपिग्राफिया इंडिका, भाग IV, सं0 11, पृ0 124-126; वर्मा टी0पी0 एवं सिंह ए0के0, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ0 687-690

[26]शुक्ल, चण्डिका प्रसाद, पूर्वनिर्दिष्ट, पृ0 20

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,81-84
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 26 दिसम्बर 2014

# तुलसीदास का जीवन और "श्री रामचरितमानस" की कल्याणकारी भावना

अशोक बैरागी*

*लेखक का घोषणा-पत्र*

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *तुलसीदास का जीवन और "श्री रामचरितमानस" की कल्याणकारी भावना* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *अशोक बैरागी* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

गोस्वामी तुलसी दास का जीवन प्रारंभ से ही विसंगतियों, दुखों, विडंबनाओं और विद्रूपताओं से ओतप्रोत रहा है। एक साधारण बालक अपनी माँ के गर्भ में 9 माह तक रहता है। इसके उलट तुलसीदास अपनी माँ के गर्भ में 12 महीने रहे और जन्म के पश्चात् उनका डील-डोल 5 वर्ष के बालक जैसा था। जन्म के बाद ही उनकी माताजी का देहावसान हो गया यह सभी परिस्थितियाँ श्री रामचरितमानस की कल्याणकारी भावना को पुष्ट करती हैं। तुलसीदास जी सामाजिक विषमताओं से अत्यंत व्याकुल हो उठे थे, उनका मन अधीर हो उठा था; उन्हें केवल शांति चाहिए थी और यह शांति उन्हें भगवान श्री राम की कृपा से आचार्य श्री नरहर्यानंद जी के शिष्यत्व के ग्रहण करने और श्रीराम कथा का अपने गुरूमुख द्वारा श्रवण करने पर उन्हें प्राप्त हुई। इस अनाथ बालक का कोई नहीं था; और जन्म लेने के तुरंत बाद इसके मुख से राम शब्द निकला था। इसलिए आचार्य ने इसे 'रामबोला' नाम प्रदान किया।

श्री रामचरितमानस तो तुलसी दास पहले ही लिख चुके थे परंतु यह विधान है कि किसी कार्य को करने का हेतु आवश्यक है। तुलसीदास का विवाह होना, फिर उनका गृहस्थ आश्रम का त्याग करना जिसके कारण उनका लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम में परिणत हो गया। यह श्री रामचरितमानस की भूमिका ही कही जायेगी। ''संवत् 1631 रामनवमी के दिन से तुलसीदास ने श्री रामचरितमानस प्रारंभ कर दो वर्ष 7 महीने 26 दिन में इस ग्रंथ की समाप्ति 1633 संवत् को राम विवाह के साथ सातों काण्डों के रूप में की।''[1]

''श्री रामचरितमानस का स्थान हिन्दी साहित्य में ही नहीं संपूर्ण भारतीय साहित्य में निराला है इसके बराबरी का ऐसा सुंदर, उत्तम काव्य के लक्षणों से युक्त, साहित्य के सभी रसों का आस्वादन कराने वाला, काव्य कला की दृष्टि से सर्वोच्च कोटि

* [नेट-जे.आर.एफ.]शोध छात्र. डी. ए. वी. इन्दौर (मध्य प्रदेशं) भारत



© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

का तथा आदर्श गार्हस्थ्य जीवन, आदर्श राजधर्म के साथ-साथ सर्वोच्च भक्ति, ज्ञान, त्याग, वैराग्य तथा सदाचार की शिक्षा देने वाला दूसरा ग्रंथ हिन्दी भाषा में उपलब्ध नहीं है।''[2]

''गोस्वामी तुलसीदास में अपने जीवन के अनुभवों से प्रभावित होकर इस राम काव्य की रचना की है। यत्र-तत्र हमें तत्कालीन राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं पारिवारिक समस्याओं और उनके समाधान के साथ ही तुलसी के जीवन की झाँकी दिखाई देती है। समन्वय-भावना से उन्होंने अपने समय के विश्रंखल समाज को संगठित करने का प्रयत्न कर ऐतिहासिक कार्य किया। उनकी इस विशेषता को देखकर ग्रियर्सन ने उन्हें बुद्ध देव के बाद सबसे बड़ा लोक नायक कहा था।''[3]

गृहस्थ आश्रम का त्याग करना तुलसीदास के लिए इतना सरल नहीं था। यह बड़ा ही दुखद और मार्मिक पीड़ा का अनुभव कराने वाला दृश्य था। जब तुलसीदास रत्नावली को छोड़कर जा रहे थे। इसका वर्णन तुलसीदास ने श्री रामचरितमानस में अयोध्या काण्ड में किया है। जब राम भगवान जाने के लिए तैयार होते है। यहाँ माता कौशल्या विभ्रम में पड़ जाती हैं कि वह पुत्र मोह को रखे या पति व्रत धर्म का पालन करे ''धरम सनेह उभव मति घेरी। भई गति साँप छुछुन्दरी केरी।। राखऊँ सुतहि करऊँ अनुरोधु। धरमु जाइ अरू बंधु विरोधू।।''[4] अब तुलसीदास क्या करे पत्नी को छोड़े या लोक धर्म निभाने के लिए घर त्यागकर वैराग्य धारण करे और अंततः यहाँ से श्री तुलसीदास का भी वनवास प्रारंभ हो जाता है।

तुलसीदास जी का उदय हुमायूँ के समय हुआ था उनके जीवन का अधिकांश समय अकबर के शासनकाल में बीता। संवत 1662 में अकबर की मृत्यु की पश्चात् वे 18 वर्ष तक जहाँगीर की हुकूमत में जीवित रहे। इस प्रकार तुलसीदास ने समस्त संसार में भारत वर्ष में चारों ओर अशांति, रोग, दोष, भ्रष्टाचार, चोरी, लूट, हत्या और अन्याय ही देखा। इन समस्त कार्यों का उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा बड़ा ही मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया है।

मुगल काल में प्रजा को बिना ही कारण दण्ड दिया जाता था। प्रजा को डरा धमकाकर आतंकित किया जा रहा था संपूर्ण भारत में मुगल अपना साम्राज्य स्थापित करने के लिए अंधाधुंध मारकाट कर रहे थे। मुगलों ने सभी राजाओं को पदच्युत कर व्यक्तित्वहीन राजाओं को नियुक्त कर रखा था। ''गोड़ गँवार नृपाल महि, जमन महा महिपाल। साम न दाम न भेद कछु, केवल दण्ड कराल।।''[5]

भक्ति आन्दोलन के सूत्रपात कि लिए यही तत्व उत्तरदायी थे चारों ओर घोर अंधकार था। राजा (बादशाह) सुरा-सुन्दरी में लिप्त थे। लूट-खसोट अपने चरम पर थी। राजाओं के अधीनस्थ तथा राज्य कर्मचारी राजाओं की आज्ञा का कठोरता से पालन करते थे। ''प्रभु ते प्रभु गन दुखद लखि, प्रजहि संभारै राऊ। कर ते होत कृपान को, कठिन घेर घन घाऊ।।''[6]

श्री रामचरितमानस में इन अत्याचारों का वर्णन करते हुए तुलसीदास ने लिखा है, ''असभ्रष्ट अचारा का संसारा, धर्म सुनिय नाहिं काना।। तेहि बहु विधि त्रासद देस निकाइस, जो कह वेद पुराना।।'' यह सब घटनायें मानसकार के अवचेतन में गहरे पैठ गई थी किसी को प्रकार की चिंता, शोक, दुख और बीमारी न हो। सम्पूर्ण प्रजा राजा को अपने पालक तुल्य समझे ये परिणति हमें तुलसीकृत श्री रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड में दिखाई देती है।

''दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि चापा।। सब नर करहिं परस्पर प्रीति। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।।''[7] तुलसी दास अमंगल से इतने प्रभावित हो चुके थे कि उनका मन जब तब प्रभु श्री राम से यही विनती करता रहता था कि हे प्रभु यहाँ ऐसा राज्य स्थापित हो कि कोई आपस में बैर न करे, सभी सुखपूर्वक प्रेम से रहे और सभी अपने-अपने धर्मों के अनुसार आचरण करते हुए जीवन यापन करें। इसी कारण श्री तुलसीदास ने श्री रामचरितमानस के उत्तरकाण्ड के बाद अपनी कथा समाप्त कर ली अन्य रामकथाओं की तरह उन्होंने लवकुश काण्ड की परिकल्पना नहीं की वे नहीं चाहते थे कि अब कोई विघ्न हो जब वे चारों और रामराज्य की कल्पना कर रामकथा के द्वारा सुशासन स्थापित कर चुके थे तो वे कदापि नहीं चाहते थे कि अब कोई ऐसा वर्णन इस कथा में हो जिससे इस कथा का दुखांत हो।

जब दुष्टता अपने चरम पर पहुँच जाती है और वह प्रकृति के साथ खिलवाड़ करने लगती है तो उसका अंत तो होता ही है। ऐसे समय में तुलसी ने राम के रूप में एक ऐसे आदर्श नायक की परिकल्पना की है जो भारतीय संस्कृति और सभ्यता की एक आदर्श एवं जीवंत प्रतिमा हैं; वे धर्म एवं नैतिकता के मानदण्ड हैं। उनमें त्याग, विराग लोकहित और मानवता का चरम उत्कर्ष देखा जा सकता है वे सर्वगुण सम्पन्न, सर्वशक्तिमान एवं शीलवान नायक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। वे मानवता के पोषण एवं उच्च आदर्शों के प्रतीक हैं। राम लोक रक्षक एवं संस्थापक हैं। यहीं पर तुलसी ने अपने काव्य में समन्वय की विराट चेष्टा

की है। उन्होंने अपने समय में व्याप्त सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में व्याप्त विषमताओं का अंत श्रीराम के माध्यम से करवाया है।

जहाँ एक और मुगलों के कारण आपसी युद्ध और कलेश उत्पन्न हो रहा था जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। दुष्टों का बोलबाला था। सज्जन व्यक्ति दुख पाते थे। प्रजा को प्रताड़ित कर उन्हें दास बनाया जा रहा था। तुलसीदास का विचार था कि समाज का कल्याण तभी सम्भव है जब समाज का प्रत्येक वर्ग अपनी भूमिका का निर्वाह किया किन्तु जब ब्राह्मण लोलुप और लोभी होगा और शूद्र जब तप करने वाले होंगे, स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म का पालन न करके अन्य पुरूषों को रिझाती फिरेंगी, विधवाएँ श्रृंगार करके समाज को भ्रष्ट करने का कार्य करेंगी, तब समाज का सर्वनाश हो जाएगा। ऐसे समय में तुलसीदास यही लिख सकते थे, ''खेती न किसान को, भिखारी को न भीख भलि। बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।। जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोचबस। कहै एक एकन सौ कहाँ जाई का करी।। दरिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु। दुरित-दहन देखी तुलसी हाहाकारी।।''[8] यह समाज के उपर्युक्त पहलू का दूसरा रूप था, परन्तु इससे भी समाज का विनाश ही हो रहा था चारो ओर त्रास फैल रहा था।

तुलसीदास के साथ भी यह स्थिति निर्मित हो रही थी उनकी मौलिकता, उनकी प्रसिद्धि, अन्य विद्वानों और ब्रह्मणों से देखी नहीं जा रही थी। वे तरह-तरह से तुलसीदास जी को परेशान करने के लिए नित नए ढोंग रचा करते थे। जब से तुलसीदास काशी गए थे तब से यह सब अपने चरम पर था। इसलिए श्री रामचरितमानस के अन्य काण्डों की अपेक्षा उत्तर-काण्ड अत्यंत मार्मिक और सुन्दर बन पड़ा है। जहाँ तुलसी की कल्पना का साकार रूप आनंद रूप इस काण्ड में प्रकट हुआ है ''अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। प्रसंग जानइ कोऊ कोऊ।।''

संसार की इस प्रकार के क्रियाकलापों से तुलसी बड़े विचलित हो गए थे श्रीराम भक्ति से उन्हें सुख और शांति मिल रही थी, किन्तु उन्हें अपनी सुरक्षा का डर था। ऐसे में उन्होंने श्रीराम भक्ति के साथ-साथ हनुमान जी की अध्यात्म साधना के साथ अपनी सुरक्षा का मार्ग प्रशस्त किया। इस रूप में उन्होंने सुन्दरकाण्ड में महावीर के पराक्रम का वर्णन किया साथ ही हनुमान चालीसा और हनुमान बाहुक जैसे ग्रंथ लिखे। उन्होंने स्वयं को और आम जन को विश्वास दिलाया कि हमें दुखों से छुटकारा पवन पुत्र, अंजनी नंदन संकट मोचन हनुमान ही दिला सकते हैं। ''दुर्जन को काल सो पाल कराल सज्जन को, सुमिरे हरनहार तुलसी की वीर को। सीय सुखदायक दुलारो रघुनायक को, सेवक सहायक है साहसी समीर को।।''[9]

इस प्रकार अपने बचपन के प्रारंभिक काल से लेकर अपनी यौवनावस्था एवं जीवन के संध्याकाल तक श्री तुलसीदास स्वयं से, समाज से, परिस्थितियों से और अपने विरोधियों से संघर्ष करते हुए अपने आप को भगवान श्रीराम के सेवक के रूप में राम राज्य की परिकल्पना के साथ स्थापित करते रहे। उनका सुख यदि राम का प्रतीक था, तो उनका दुख रावण का। श्री राम भक्ति के लक्ष्य में उन्होंने स्वयं को इतना अधिक डुबो लिया कि उन्हें सांसारिक दुखों का आभास ही नहीं हुआ, परन्तु संसार की यह माया उन पर तरह-तरह से प्रहार किया करती थी। जिससे वे द्रवित हो जाया करते थे और प्रभु श्रीराम को याद कर कीर्तन किया करते थे। उनका मानना था कि प्रभु श्रीराम ही सबका उद्धार कर सकते हैं। यहाँ मृत्यु लोक में कितने ही दुख क्यों न हो भगवान श्रीराम के इस उत्तम चरित्र का वर्णन करने से वे अवश्य स्वर्ग को प्राप्त होंगे। "मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।।''[10]

## सन्दर्भ ग्रंथ

[1] *रामचरितमानस, तुलसी दास जी की संक्षिप्त जीवनी,* पृष्ठ संख्या 10-11
[2] *रामचरितमानस,* निवेदक, पृष्ठ संख्या 01
[3] डॉ. राधेश्याम शर्मा -*साहित्य एवं संस्कृति चिन्तन,* पृष्ठ संख्या 17
[4] उपरिवत, पृष्ठ संख्या 276
[5] दोहावली, पृष्ठ संख्या 155
[6] दोहावली, छंद-501, पृष्ठ संख्या 139
[7] *रामचरितमानस,* उत्तरकाण्ड, -9

[8]*कवितावली,* उत्तरकाण्ड-97, पृष्ठ संख्या 112
[9]*हनुमान बाहुक,* छन्द-10, पृष्ठ संख्या 07
[10]*रामचरितमानस,* बालकाण्ड, छन्द-10, पृष्ठ संख्या 15

# लेखकों के लिए निर्देश

## शोधपत्र का अनुरोध

लेखक अपना शोधपत्र डॉ. मनीषा शुक्ला ,प्रधान सम्पादिका आन्वीक्षिकी भारतीय शोध पत्रिका को ई-मेल पर प्रेषित करें। (maneeshashukla76@rediffmail.com)

प्राप्त शोधपत्र पत्रिका में प्रकाशन के पूर्व पुनर्निरीक्षित किये जायेंगे। स्वीकृत शोधपत्र कहीं और प्रकाशित नहीं होना चाहिए और न ही उस शोधपत्र का कोई भी भाग प्रधान सम्पादिका के अनुमति के बिना कहीं और प्रकाशित किया जा सकता है। कृपया अपने शोधपत्र की पाण्डुलिपि निम्न भागों में तैयार करें,शीर्षक ;सारांश ;पाण्डुलिपि ;पुस्तक संदर्भ सूची। कृपया पुनर्निरीक्षण की गुणवत्ता में सहायता करने हेतु अपना नाम पता पाण्डुलिपि पर न दें।

**शीर्षक :**शीर्षक पाण्डुलिपि पर अवश्य दें,किन्तु अपना पूरा नाम,पता,संस्था जहाँ पर अध्ययन अथवा अध्यापन कार्य सम्पादित किया गया हो, आपका विषय,दूरभाष अथवा मोबाइल,फैक्स,ई-मेल पत्राचार हेतु अलग पृष्ठ पर अवश्य दें। उपर्युक्त तथ्य आपके शोधपत्र के शब्द सीमा के अन्तर्गत ही माना जायेगा।

**सारांश :**कृपया शोधपत्र का सारांश 120 शब्दों में दें।

**पाण्डुलिपि :**इसके अन्तर्गत मुख्य पाठ्य सामग्री होगी ; जो 5 से 10 पृष्ठ तक होनी चाहिये। शोधपत्र 10 पृष्ठ से (सारांश,शब्द संक्षेप,संदर्भ सूची समेत)अधिक प्रकाशन हेतु स्वीकार नहीं किया जायेगा। अन्यथा वृहद् शोधपत्र(10 पृष्ठ से अधिक) प्रकाशन में देर भी हो सकती है। लेखक को यह बात स्वीकार होनी चाहिए कि शोधपत्र पुनर्निरीक्षण के दौरान किये गये संशोधन उन्हें मान्य होंगे। शोधपत्र प्रकाशन के दौरान त्रुटि की सम्भावना न बने इसका पूरा ध्यान रखा जाता है फिर भी कोई त्रुटि पाये जाने पर लेखक संशोधित रीप्रिंट प्राप्त कर सकता है ; पत्रिका में संशोधन की व्यवस्था नहीं है।

**सन्दर्भ वर्णमालाक्रमानुसार :**शोधपत्र के समापन पर कृपया संदर्भ वर्णमाला क्रमानुसार दें। पत्रिका का वर्ष,लेखक, पृष्ठ संख्या,भाग इत्यादि विस्तार से दें। पुस्तक शीर्षक या पत्रिका शीर्षक इटालिक दें।

**पुस्तक :**प्रकाशक का नाम,संस्करण संख्या,प्रकाशन वर्ष,लेखक का नाम,पुस्तक का नाम,पृष्ठ संख्या

**पत्रिका :**पत्रिका का नाम,लेख का शीर्षक,लेखक का नाम,प्रकाशक का नाम,अंक संख्या/माह,वार्षिक अथवा अर्द्धवार्षिक अथवा मासिक जो भी हो स्पष्ट करें।

**समाचार पत्र :**प्रकाशक,तिथि,सन् ,पृष्ठ संख्या,

**इण्टरनेट :**वेबसाइड,पृष्ठ संख्या,मुख्य शीर्षक,अन्त: शीर्षक।

**मानचित्र एवं सारणी :**मानचित्र एवं सारणी अथवा चित्र शोधपत्र की समाप्ति के अन्त में दें। यह ब्लैक एण्ड व्हाइट ही होना चाहिए। इसका स्पष्ट संकेत पाण्डुलिपि में दें(उदाहरण सारणी संख्या 1)

**विशेष :**कृपया अपना शोधपत्र ई-मेल करने के बाद डॉक से अवश्य भेजें। अपने शोधपत्र के साथ-साथ अपना वायोडाटा, फोटो,स्वपता लिखा लिफाफा(25 रू के टिकट सहित)भेजें। शोधपत्र यदि हिन्दी भाषा में है तो ए.पी.एस प्रियंका रोमन(ए.पी.एस. कार्पोरेट 2000++)में तैयार सी.डी के साथ दें। शोधपत्र प्राप्त होने के एक सप्ताह के अन्दर लेखक को स्वीकृति पत्र प्रेषित कर दिया जायेगा। ई-मेल से प्राप्त शोधपत्र हेतु ई-मेल से स्वीकृति भेजी जायेगी। शोधपत्र प्रेषित करने के पूर्व प्रधान सम्पादिका से दूरभाष पर अवश्य सम्पर्क करें। सम्पादक मण्डल अथवा सलाहकार समिति में सम्मिलित करने का अंतिम निर्णय संस्था का होगा।

सदस्यों से निवेदन है कि वर्ष में 20 सदस्य पत्रिका से जोड़कर संस्था का सहयोग करें।